KGS IAS

KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform

KHAN SIR

संघ लोक सेवा आयोग तथा अन्य राज्य लोक सेवा आयोग
के लिए महत्वपूर्ण उपयोगी पुस्तक

निबंध

मुख्य आकर्षण

विषयवार महत्वपूर्ण शूक्तियाँ, उद्धरण एवं कथन

विभिन्न महत्वपूर्ण विषय वस्तुओं पर सारगर्भित सामग्री

1 जीवन की सार्थकता/मूल्य/श्रेष्ठ कर्म/लोक कल्याण/परोपकार (Meaning of Life / Value / Best Deeos / Public Welfare/)

- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए प्रत्येक कदम एवं स्तर पर उसे एक-दूसरे के सहयोग एवं समर्थन की आवश्यकता होती है।

यही पशु प्रवृति है कि आप-आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।। **– मैथिलीशरण गुप्त**

- गोस्वामी तुलसीदास ने भी मानव जीवन की सार्थकता परोपकार रूपी श्रेष्ठ कर्म में ही देखी थी –

"परहित सरिस धरम नहिं भाई
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।"

पुराणों में भी यह कहा गया है कि– 'परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्' अर्थात् परोपकार से बढ़कर कोई पुण्य/उत्तम कर्म नहीं और परपीड़ा से बढ़कर कोई पाप/नीच कर्म नहीं। परोपकार की भावना ही वास्तव में व्यक्ति को मनुष्य बनाती है। कभी किसी भूखे व्यक्ति को खाना खिलाते समय चेहरे पर व्याप्त सन्तुष्टि के भाव से जिस असीम आनन्द की अनुभूति होती है, वह अवर्णनीय है। किसी वास्तविक अभावग्रस्त व्यक्ति की नि:स्वार्थ भाव से अभाव की पूर्ति करने के बाद जो सन्तुष्टि प्राप्त होती है, वह अकथनीय है। परोपकार की भावना करुणा से जागृत होती है। करुणा दु:खी व्यक्ति के दु:ख से द्रवित होने की भावना है जिसमें सहायता, रक्षा और परोपकार का भाव निहित है। इन्हीं उदात्त तत्वों ने समाज-संरचना में अपनी प्रमुख भूमिका निभाई है।

परोपकार से मानव के व्यक्तित्त्व का विकास होता है। व्यक्ति 'स्व' की सीमित संकीर्ण भावनाओं की सीमा से निकलकर 'पर' के उदात्त धरातल पर खड़ा होता है। इससे उसकी आत्मा का विस्तार होता है और वह जन-जन के कल्याण की ओर अग्रसर होता है।

- *"खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है,*
  भलों के लिये तो यही स्वर्ग है।
  सुनो स्वर्ग क्या है ? सदाचार है।
  मनुष्यत्व की मुक्ति का द्वार है।
  नहीं स्वर्ग कोई धरावर्ग है,
  जहाँ स्वर्ग का भाव है, स्वर्ग है।
  सदाचार ही गौरवागार है,
  मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।" **– मैथिलीशरण गुप्त**

- *सभी कुछ हो रहा है इस तरक्की के जमाने में।*
  मगर ये क्या गजब है आदमी इन्सां नहीं होता।।

- *'वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर,*
  परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर।'

- *यों रहीम सुख होत है, उपकारी के संग*
  बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी के रंग।

- *परहित बस जिन्ह के मन माहीं।*
  तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।

- *"सकल पदारथ है जग मांही।*
  करमहीन नर पावत नांही।"

  गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि इस जगत में नाना प्रकार के संसाधन विद्यमान हैं। परन्तु इसकी प्राप्ति के लिए वे कर्म की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। कर्मों के चयन और कर्म करने की हमें स्वतंत्रता है। जो कर्मठ है वह ज्ञान अर्जित कर संसाधनों के सदुपयोग से सुख पा रहा है, जो आलसी, निष्क्रिय एवं अज्ञानी है, वह इस संसार में रहकर भी कुछ प्राप्त नहीं कर पाता है और दु:खों को झेलता है।
- नदी का पानी जब तक बहता रहता है ताजा रहता है, जब रुक जाता है तो सड़ने लगता है।
- यह दुनिया दुर्जनों की दुष्टता की वजह से उतनी पीड़ित नहीं है, जितनी सज्जनों की निष्क्रियता के मारे पीड़ित है। ***- रोम्यां रोला***
- सोचो, विचारो, विश्लेषण करो। खोजो, पाओ अपने अनुभव से तब स्वीकार करो। मैं जो कुछ-कहूँ उसे मेरे प्रति आदर दिखाने के लिए मत स्वीकार करो। यदि आपको ठीक नहीं लगे तो उसे अस्वीकार कर दो। ***- बुद्ध***
- किसी के पीछे मत चलिए लेकिन सीखिए सबसे। ***-अज्ञात***
- अगर आपके पड़ोसी पर अत्याचार और अन्याय हो रहा है और आपको नींद आ जाती है तो अगला नम्बर आपका है। ***-शिव खेड़ा***
- अन्याय और अत्याचार करने वाला उतना दोषी नहीं, जितना उसे सहन करने वाला। ***-लोकमान्य तिलक***
- कोई अन्याय केवल इसलिए मान्य नहीं हो सकता कि लोग उसे परम्परा से सहते आए हैं। ***-प्रेमचन्द***
- केवल यही काफी नहीं है कि सीधे तौर पर झूठ बोलने से बचा जाए, वरन् चाहिए यह कि चुप रहकर या इनकार करके भी झूठ को न छिपाया जाए। ***-टॉल्सटॉय***
- कट्टरपन और असहिष्णुता सत्यान्वेषण में बाधक तो होते ही हैं, परन्तु वे जिस पक्ष का समर्थन करते हैं उसे भी हानि पहुँचाते हैं। ***-गाँधी***
- बुराई से असहयोग करना मानव का पवित्र कर्त्तव्य है। ***-गाँधी***
- मनुष्य के कर्म ही उसके विचारों की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या है। इसलिए सबसे पहले मनुष्य के कर्म देखो। ***-जॉन लॉक***
- निजी सम्पत्ति अपने में कोई बुराई नहीं है लेकिन बुराई उसके अर्जन के प्रति अन्धी दौड़ में छिपी है। सम्पत्ति को बटोरना और भौतिक सुविधाओं को अपने ऊपर इतना हावी कर लेना कि सत्य, विवेक, ईश्वर, प्रेम सब उसके नीचे दब जायें, यह बुरी बात है। ***-ऑगस्टिन***
- सदाचार के आधार पर लोकाचार बनता है और लोकाचार हमेशा सदाचार हो, ऐसा जरूरी नहीं है। लोकाचार की स्थापना सदाचार पर होना जरूरी है। लेकिन प्रत्येक लोकाचार सदाचार नहीं होता। सदाचार नहीं होता तो लोकाचार भी सदाचार का रूप धारण कर लेता है। इसलिए लोकाचार के विरुद्ध भी युद्ध करना पड़ता है। ***-डॉ. छगन मोहता***

- अशान्ति की जड़
  - जनता की दुर्बलता
  - सन्तों की वाक् विलासिता
  - दुर्जनों की मुखरता
  - महाजनों की अर्थ लोलुपता
  - शासकों की सत्ता पिपासा एवं स्वार्थवादिता
  - सज्जनों का मौन, निष्क्रियता एवं शिथिलिता
- नया समाज कैसे बने?

  सामन्तवादी संस्कार, पूंजीवादी रहन-सहन, समाजवादी नारों और क्रान्तिकारी घोषणाओं से
  - तन्त्र टिकता है : लोक नहीं
  - दल जीतता है : दिल नहीं
  - धार्मिक प्रभावी होता है : धर्म नहीं

  पारिवारिक परिवेश, सामाजिक शिष्टाचार, आर्थिक व्यवस्था और अभिजात्य संस्कृति में बुनियादी परिवर्तन हुए बिना नया समाज कैसे बनेगा? अन्तर्विरोधों से अशान्ति पैदा होती है।
- जीवन-दृष्टि
  - विचार का बीज बोकर कार्य पैदा करें।
  - कार्य का बीज बोकर स्वभाव पैदा करें।
  - स्वभाव का बीज बोकर चरित्र पैदा करें।
  - चरित्र का बीज बोकर सौभाग्य की फसल तैयार करें, जिससे सत्-चित् आनन्द फले, शान्ति की बयार चले।
- **'महाजनो येन गतः स पन्था'** अर्थात् महान लोग जिस पथ पर चले हैं हमें भी उसी श्रेष्ठ पथ का अनुसरण करना चाहिए। जीवन में जब निर्णय लेने में कठिनाई हो या द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो तो उस समय इस कथन को याद करते हुए हम तद्नुरूप आचरण कर सकते हैं।
- *"कुछ लोग हैं जो वक्त के साँचे में ढल गए,*
  कुछ लोग हैं जो वक्त के साँचे बदल गए।"
- *"सीने में जलन, आँखों में तुफान-सा क्यूँ है*
  इस शहर में हर शख्स परेशान-सा क्यूँ है।"

  आधुनिक जीवन-शैली ने मानव के आत्मिक उत्थान के बजाय उसे यंत्रवत् जीवन जीने के लिए प्रेरित किया है। भौतिक संसाधनों की बहुलता होते हुए भी जीवन में परेशानियाँ है, शांति एवं आत्मिक आनंद की कमी है।
- मूल्यविहिन भौतिक प्रगति का दुष्परिणाम यह हुआ है कि अर्थ और काम की प्राप्ति हेतु समाज का नया वर्ग नकारात्मक साधनों का प्रयोग कर रहा है।
- *''कुपथ कुपथ रथ दौड़ाता जो, पथ निर्देशक वह है,*
  लाज लजाती जिसकी कृति से, धृति उपदेश वह है,
  मूर्त दंभ गढ़ने उठता है शील विनय परिभाषा,
  मृत्यु रक्तमुख से देता जन को जीवन की आशा।

  - आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री

राजनीति में फैली अंधेरगर्दी और भ्रष्टाचार को लक्ष्य करके आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री ने लिखा था,
''ऊपर-ऊपर पी जाते हैं, जो पीने वाले हैं...''

- *असतो मा सद्गमय,*
  तमसो मा ज्योतिर्गमय,
  मृत्योर्मा अमृतं गमय। *-बृहदारण्यक उपनिषद्*

मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

- *कौन कहता है आसमाँ में सुराख नहीं हो सकता,*
  एक पत्थर तो ज़रा तबीयत से उछालो यारों।। *-दुष्यंत कुमार*

आशय है कि मन लगाकर कार्य करने से कठिन-से-कठिन कार्य में भी सफलता मिल जाती है।

- जीवन में केवल मानसिक कल्पना मात्र से लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती बल्कि उसके लिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है। किसी ने ठीक ही कहा है कि-

यों तो सपनों की तस्वीर हर कोई सजाता है।
सफलता उसी को मिलती है जो पत्थर पर लकीर बनाता है।।

- *येषां न विद्या न तपो न दानं,*
  ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः !
  ते मर्त्यलोके भुविभारभूता,
  मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति !! *- चाणक्य नीति*

अर्थात् जिन लोगों के पास विद्या, तप, दान, शील, गुण और धर्म नहीं होता। ऐसे लोग इस धरती के लिए भार हैं और मनुष्य के रूप में मृग/जानवर की तरह घूमते हैं।

- *अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम् !*
  उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् !!

अर्थात् यह मेरा है और यह तेरा है, ऐसी सोच छोटे विचारों वाले लोगों की होती है। इसके विपरीत उदार, उदात्त चरित्र वाले व्यक्ति के लिए यह पूरी धरती एक परिवार की तरह होती है।

- *विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम् !*
  पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम् !!

अर्थात् विद्या हमें विनम्रता प्रदान करती है, विनम्रता से योग्यता आती है व योग्यता से हमें धन प्राप्त होता है और इस धन से हम धर्म के कार्य करते हैं तथा सुखी रहते हैं।

'सुनो स्वर्ग क्या है? सदाचार है।
मनुष्यता की मुक्ति का द्वार है।'

अर्थात् उस खजूर के पेड़ की तरह ना बने, जो भले ही बड़ा हो लेकिन राहगिरों को छाया प्रदान नही कर सकता और भले ही जिसपर फल लग जाए, लेकिन कोई उसे पा नहीं सकता क्योंकि वो बहुत ऊँचा होता है।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर,
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर। *- कबीर*

- मनुष्य की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति, आत्ममुग्धता, निरर्थक बेचैनी और उद्देश्यविहीन जीवन-यापन देखकर किसी ने ठीक ही कहा है कि-

सब अपनी-अपनी कहते हैं!
कोई न किसी की सुनता है,
नाहक कोई सिर धुनता है,
...
सब ऊपर ही ऊपर हँसते,
भीतर दुर्भर दुख सहते हैं!
ध्रुव लक्ष्य किसी को है न मिला,
सबके पथ में है शिला, शिला,

- भारतीय संस्कृति में विश्व परिवार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के साथ सर्वमंगल की कामना की गयी है। यहाँ यह आह्वान किया गया है कि-

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत् ॥

अर्थात् सभी प्राणि सुख शान्ति से पूर्ण हों, सभी रोग, व्याधि से मुक्त रहें, कोई दुःख का भागी न बने और सभी कल्याण मार्ग का दर्शन व अनुसरण करें ।

- जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' में व्यक्ति और समाज के संबंध के संदर्भ में यह कहते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज का एक अंग है। समाज के कल्याण के बिना व्यक्ति का कल्याण संभव नहीं है। अतः मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने 'मैं' का विस्तार कर समाज के 'हम' में विलीन कर दे। ऐसा होने पर ही वास्तव में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अवधारणा साकारित होगी।

औरों को हंसते देखो मनु,
हंसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत करलो,
सबको सुखी बनाओ।

इस संसार में अपने जीवन को सुखमय बनाने की उपरोक्त शैली प्रशंसनीय है, अनुकरणीय है।

- मूल्य आधारित शिक्षा प्रणाली और ईमानदारी पूर्वक किये गयें प्रयास से ही शांति, सम्पन्नता और लाभ को दीर्घकालिक बनाया जा सकता है।

नीतिपरायणता

जब होती है दिल में नीतिपरायणता।
तो चरित्र में आता है सौंदर्य,
जब चरित्र में आता है सौन्दर्य,
तो घर में आता है सामंजस्य,
जब घर में आता है सामंजस्य,
तो देश में क्रम आता है,
जब देश में आता है क्रम
तो दुनिया में शान्ति आती है।

- मैथलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में भारतवर्ष की तत्कालीन दुर्दशा पर दु:ख प्रकट करते हुए लिखा है-

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्यायें सभी।।

- *एक दीप ऐसा भी जलाओ, अंधकार भागे।*
अन्तस्तल का और मानव का कल्याण जागे।

- *जो भरा नहीं भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।*
वह हृदय नहीं पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।

- *मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक।*
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएँ वीर अनेक।।

- माखनलाल चतुर्वेदी

- *जीवन-वृत्त महापुरूषों के, हमें दिलाते हैं यह ध्यान।*
चलकर इनके पद्-चिन्हों पर, बन सकते हो व्यक्ति महान्।

- *''अपने दौर की चुनौतियों से निपटने के लिए, मुझे विश्वास है कि मानवता को वैश्विक दायित्व का महान भाव विकसित करना होगा। हम में से हरेक को सिर्फ, अपने, अपने परिवार या राष्ट्र के लिए ही नहीं, बल्कि समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए काम करना सीखना होगा।''* **- दलाई लामा**

2 वैज्ञानिक मनोवृत्ति तथा प्रगति (Scientific Temperament and Progress)

वैज्ञानिक मनोवृत्ति एक महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य है। जब मानव का जीवन अंधविश्वास, पूर्वाग्रह, कुसंस्कार एवं रूढ़िवादी ज्ञान से संचालित न होकर विवेक आधारित ज्ञान से संचालित होता है तो उसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक कहा जाता है और जब विवेक आधारित चिन्तन उसका स्वभाव हो जाता है तो उसे वैज्ञानिक मनोवृत्ति (Scientific Temperament) कहते हैं। स्पष्ट है कि वैज्ञानिक मनोवृत्ति का संबंध दृष्टिकोण, पद्धति एवं स्वभाव से है। यह स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से सोचने एवं कार्य करने, समस्याओं को सुलझाने तथा जीवन जीने का एक तरीका है। यह व्यावहारिक एवं विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त करने की मनोवृत्ति है जिसमें किसी बात को उपलब्ध तथ्यों एवं साक्ष्यों के आधार पर ही स्वीकार किया जाता है। वस्तुत: वैज्ञानिक मनोवृत्ति प्रश्न पूछने और छानबीन या जांच-पड़ताल के बाद अपनी अवधारणाओं को बनाने की प्रवृत्ति है। यह मनुष्य की जागरूक एवं जिज्ञासु प्रवृत्ति को इंगित करता है। यह सहयोग, समीक्षा, सुधार, नवाचार एवं प्रगति (Progress) की मनोवृत्ति है। इसमें सत्य की निरंतर खोज का प्रयास निहित होता है। नेहरू के अनुसार लोगों का वैज्ञानिक मनोवृत्ति से युक्त होना प्रगति का सूचक है।

सामान्यत: वैज्ञानिक मनोवृत्ति को विज्ञान या वैज्ञानिक उपलब्धियों से जोड़ दिया जाता है। परन्तु वास्तव में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का तात्पर्य मनुष्य के उस दृष्टिकोण और पद्धति से है जिसके द्वारा वह उपलब्ध तथ्यों के आधार पर किसी विषय के बारे में व्यवस्थित ढंग से प्रश्न उठाता है और उसका तर्कसंगत उत्तर प्राप्त करता है।

वैज्ञानिक मनोवृत्ति का आशय वैज्ञानिक सिद्धांतों की जानकारी या तकनीकी ज्ञान से नहीं है और न ही वैज्ञानिक मनोवृत्ति का क्षेत्र अविष्कारों एवं खोजों तक सीमित है। पुन: यह कोई वैज्ञानिक या इंजीनियर की बपौती या धरोहर मात्र नहीं है। इसके विपरित कोई वैज्ञानिक या इंजीनियर भी वैज्ञानिक मनोवृत्ति से रहित हो सकता है यदि उसके जीवन में अंधविश्वास एवं रूढ़िवादिता विद्यमान हो। दूसरी ओर एक किसान या चरवाहा भी वैज्ञानिक मनोवृत्ति से युक्त हो सकता है, यदि उसकी कार्य प्रणाली में तार्किकता एवं योजनाबद्धता हो। स्पष्ट है कि केवल प्रयोगशाला की विभिन्न समस्याओं के समाधान के

लिये ही नहीं बल्कि दैनिक जीवन की समस्याओं का हल करने के लिए भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है और वास्तव में अपनाया जाना चाहिए। इस रूप में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का संबंध सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि जीवन के सभी पक्षों से है।

यहाँ वैज्ञानिक मनोवृत्ति के स्वरूप एवं आशय को स्पष्ट करने के लिए धार्मिक मनोवृत्ति (Religious Temperament) से इसके अंतर को देखना आवश्यक है। इसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं-

क्र.सं.	धार्मिक मनोवत्ति	वैज्ञानिक मनोवृत्ति
1.	मूलतः आस्था एवं विश्वास पर आधारित	मूलतः अनुभव एवं परीक्षण पर आधारित
2.	आत्मनिष्ठ पद्धति	वस्तुनिष्ठ पद्धति
3.	विवादों के संदर्भ में धर्मग्रंथों एवं धर्माचार्यों के कथन प्रमाणिक	विवादों की स्थिति में आनुभाविक सत्यापन के आधार पर निर्णय
4.	घटनाओं की प्रयोजनपूर्ण व्याख्या, भावनात्मक स्पर्श भी।	घटनाओं की यथार्थपरक व्याख्या कोई भावनात्मक स्पर्श नहीं
5.	'हम लोग' (विशेष धर्म समर्थक) और 'वे लोग' (विशेष धर्म से भिन्न) की भावना समाहित	'सर्व' की भावना निहित अर्थात सबके लिए मान्य। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आग्रह इस बात पर रहता है कि लोग 'हम' और 'वे' की दृष्टि से देखना बंद करें और सत्य और असत्य क्या है, इसे देखते जाएँ।
6.	पारमार्थिक जगत का ज्ञान	लौकिक जगत का ज्ञान
7.	*श्रद्धावान लभते, संदेह आत्मा विनस्यति* (श्रद्धा रखने वाले लाभ प्राप्त करेंगे और संदेह करने वाली आत्मा नष्ट होगी)	*संदेह आत्मा लभते, श्रद्धावान विनस्यति* (जो संदेह करेगा वह लाभ प्राप्त करेगा, जो श्रद्धा रखेगा उसका विनाश होगा)
8.	चमत्कारों की कारणपरक व्याख्या	चमत्कार आदि को मान्यता
9.	हठवादिता, भाग्यवादिता एवं पलायनवादिता को बढ़ावा	उदारता, विवेकशीलता एवं इहलौकिकता को बढ़ावा।

वैज्ञानिक मनोवृत्ति के लक्षण/आधार या महत्वपूर्ण तथ्य

(1) वस्तुनिष्ठता (Objectivity) : इसका आशय है कि लोक विश्वास, निजी राय या पूर्वाग्रह के आधार पर निष्कर्ष न निकाल कर वस्तुनिष्ठ निरीक्षण के आधार पर निष्कर्ष निकालना। इसमें सार्वजनिकता होती है। वस्तुनिष्ठ निरीक्षण से प्राप्त ज्ञान की विश्वसनीयता अधिक होती है।

(2) परीक्षण (Experimentation) : किसी क्षेत्र विशेष का सुव्यवस्थित अध्ययन ही विज्ञान है। इस सुव्यवस्थित ज्ञान को प्राप्त करने की प्रणाली आनुभाविक निरीक्षण, अन्वेषण (Exploring) एवं परीक्षण है। यही प्रणाली वैज्ञानिक मनोदशा के लिए आधार का कार्य कर सकती है।

(3) मानसिक सक्रियता : यह मानसिक आलस्य, निष्क्रियता या शिथिलता का विलोम है। मानसिक सक्रियता से जागरूकता एवं जिज्ञासा पैदा होती है। वस्तु को जानने, खोजने, समझने की लालसा उत्पन्न होती है। मन की ऐसी प्रवृत्ति होनी चाहिए कि वह अपने आसपास की घटनाओं में रुचि ले और अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास करे।

(4) विश्वास का आधार ढूँढ़ने की मनोवृत्ति : इसका आशय है कि बिना परखे केवल सुनी-सुनाई बातों या प्रचलित मान्यताओं के आधार पर किसी बात को स्वीकार न करना। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए. ठोस तथ्यों, प्रामाणिक आँकड़ों एवं वस्तुनिष्ठ तरीके से परीक्षण का होना आवश्यक है।

(5) खुला मन (Open Mindedness) : वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमेशा नये विचारों के लिए खुला होता है। व्यक्तिगत रुचि-अरुचि से ऊपर उठकर यहाँ इस बात पर बल दिया जाता है कि नये तथ्य या प्रमाण प्राप्त होने पर पुनर्विचार कर

हम अपने मत को बदल सकते हैं। इसमें समस्या समाधान के क्रम में भावावेश, जिद् या किसी पूर्व धारणा के बिना खुले दिमाग से विचार करने का भाव निहित है।

(6) विनम्रता (Humility) : वैज्ञानिक मनोवृत्ति का एक महत्वपूर्ण लक्षण विनम्रता है। इसमें अपने मत को विनम्रता से प्रकट करने का भाव निहित है। हम कभी भी सर्वज्ञ होने का दावा नहीं कर सकते। अतः हमें दूसरों के विचारों को विनम्रता से सुनना चाहिए। इससे अपने मत पर ही अड़े रहने की प्रवृति का परित्याग होता है।

(7) मानवीय शक्ति में विश्वास (Confidence in our ability) : इसमें सामाजिक समस्याओं के निराकरण एवं अन्य मानवीय समस्या के समाधान के क्रम में मनुष्य की कार्यक्षमता एवं विज्ञान की शक्ति पर विश्वास करने की बात निहीत है। इस प्रकार वैज्ञानिक मनोवृत्ति से जीवन के प्रति एक सकारात्मक सोच विकसित होती है। यह भाग्यवाद से भिन्न मनोवृत्ति है। यहाँ घटनाओं के कारक एवं नियंत्रक के रूप में किसी अलौकिक शक्ति को स्वीकार नहीं किया जाता। यहाँ यह माना जाता है कि जो समस्याएँ आज हैं, उन्हें हम भविष्य में सुलझा सकते हैं।

(8) तार्किक संदेह : वैज्ञानिक मनोवृति में बिना किसी बौद्धिक आधार के किसी बात को स्वीकार नहीं किया जाता। इसमें किसी विषय पर व्यवस्थित तरीके से सवाल उठाना और उन सवालों का क्रमिक रूप से समाधान निकालना सम्मिलित है। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के जनक डेकार्ट भी निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्ति के लिए संदेह को आवश्यक समझते थे।

इसके अतिरिक्त धैर्य अर्थात् जल्दबाजी में किसी नतीजे पर न पहुंचना, भाग्यवाद का निषेध, इहलौकिकता, प्रश्न पूछने की व्याकुलता, ग्रहणशील मनोवृत्ति, कार्य के प्रति समर्पण का भाव, कार्य में पूरी ईमानदारी आदि भी वैज्ञानिक मनोवृत्ति के लक्षण के रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

स्पष्ट है कि वैज्ञानिक मनोवृत्ति, वैज्ञानिक पद्धति एवं वैज्ञानिक आधार का विवेक एवं व्यवहार के साथ समन्वय है। यह जीवन के किसी भी क्षेत्र में सीखने की प्रक्रिया, जिज्ञासा एवं खोजी प्रवृत्ति को इंगित करता है। यह व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों एवं आचरण को प्रभावित करता है। यह मनोवृत्ति व्यक्ति के आंतरिक पक्ष अर्थात्, बौद्धिक, तार्किक, रचनात्मक क्षमता से जुड़ी है जिसका प्रकटीकरण बाह्य व्यवहार एवं अन्य क्रिया-कलापों में होता है। बर्टेड रसेल अपनी पुस्तक "Scientific outlook and society" में यह कहते हैं कि *"प्रचलित विश्वास एवं पारंपरिक पूर्वाग्रहों से रहित होकर निष्पक्ष भाव से ज्ञान की प्रगतिशील जिज्ञासा ही वैज्ञानिक मनोवृत्ति है।"*

वैज्ञानिक मनोवृत्ति जन्मजात नहीं होती। इसका उद्भव एवं विकास होता है। इसके विकास में विज्ञान, विज्ञान की पद्धति, स्वविवेक एवं अनुभव का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसमें एक तरफ अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, संकीर्णता आदि का परित्याग होता है तो दूसरी तरफ व्यक्ति में सर्वांगीण, तार्किक, समीक्षात्मक, रचनात्मक, दूरदर्शितापूर्ण दृष्टि का विकास होता है।

वैज्ञानिक मनोवृत्ति की विशेषताएँ

(1) मनोवृत्ति वाला व्यक्ति तार्किकता में विश्वास रखता है। अतः वह रूढियों और अंधविश्वासों से मुक्त होता है।

(2) वैज्ञानिक मनोवृत्ति मनुष्य की आंतरिक प्रवृत्ति है जिसके आलोक में व्यक्ति सभी विषयों का अध्ययन करता है।

(3) वैज्ञानिक मनोवृत्ति जन्मजात गुण नहीं है बल्कि निरन्तर अभ्यास द्वारा इसे विकसित किया जा सकता है।

(4) वैज्ञानिक मनोवृत्ति मानवता की रक्षा और उसके हित के लिए आवश्यक है। यह जीवन की गुणवत्ता और जीवन के प्रत्येक पक्ष के सतत् विकास (Sustainable Development) पर जोर देता है।

(5) वैज्ञानिक मनोवृत्ति धर्म के पारलौकिक पक्ष को कम महत्व देकर उसके मानवीय पक्ष को उभारती है।

(6) वैज्ञानिक मनोवृत्ति वाला व्यक्ति स्वतंत्रता, समानता, पंथनिरपेक्षता, लोकतंत्र आदि अवधारणाओं में विश्वास रखता है।

(7) वैज्ञानिक मनोवृति सामाजिक परिवर्तन का प्रेरक है। वैज्ञानिक मनोवृति से युक्त व्यक्ति उन्हीं तथ्यों को स्वीकार करता है जो तार्किक दृष्टि से सही है। ऐसे में वैज्ञानिक मनोवृति वाला व्यक्ति सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का विरोधी होता है, क्योंकि रूढ़ियों का आधार अतार्किक होता है।

वैज्ञानिक मनोवृति के संबंध में नेहरू अपनी पुस्तक **'Discovery of India'** में कहते हैं कि- *"आज सारे देशों और समुदायों के लिए विज्ञान का उपयोग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। लेकिन विज्ञान का उपयोग ही पर्याप्त नहीं है। असली चीज है वैज्ञानिक दृष्टि, साहसिक किन्तु विवेकपूर्ण विज्ञान की दृष्टि, नये ज्ञान और सत्य की खोज, बिना जाँचे परखे किसी बात को न मनाने का इरादा, नये तथ्यों के प्रकाश में पूर्व निर्णयों को बदलने की क्षमता, प्रचलित सिद्धान्तों के स्थान पर वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का सहारा, मन का दृढ़ अनुशासन- ये सब विज्ञान के लिए ही नहीं, जीवन सत्य को जानने और उसकी विविध समस्याओं का हल करने को लिए आवश्यक है।"*

वैज्ञानिक मनोवृत्ति के दोष

- यह तार्किकता एवं बौद्धिकता पर बहुत जोर देता है परन्तु मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है। यह मनुष्य के भावनात्मक एवं संवेगात्मक पक्ष को संतुष्ट नहीं कर पाता। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने हमें आकाश में चिड़ियों की भाँति उड़ना और जल में मछलियों की भाँति भ्रमण करना तो सिखा दिया है परन्तु हमें पृथ्वी पर कैसे रहना है, इसे नहीं बता पाया। इसके लिए दार्शनिक दृष्टिकोण एवं मूल्यात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है।
- वैज्ञानिक मनोवृत्ति में वस्तुनिष्ठता एवं तथ्यों की उपस्थिति पर बल दिया जाता है। परन्तु केवल इन्हीं के आधार पर निर्णय नहीं दिये जा सकते।
- धर्म, कला, संगीत, साहित्य आदि का मूल्यांकन, तार्किकता के आधार पर नहीं किया जा सकता। जीवन के सौन्दर्य के लिए अंतर्दृष्टि आवश्यक है, जो जीवन को समग्रता से देखती है।
- मानव जीवन के बहुत सारे ऐसे पक्ष हैं जो वैज्ञानिक परिधि से परे हैं। सत्य विश्लेषण से नहीं अपितु समन्वय से प्राप्त होता है। अद्वैत वेदान्तियों के अनुसार परमसत् ब्रह्म वस्तुनिष्ठ परीक्षण का विषय न होकर अपरोक्ष अनुभूतिगम्य है। **कीर्केगार्ड** का भी कहना है कि सत्य वस्तुनिष्ठ रूप से नहीं जाना जा सकता। उनके अनुसार - ***"सत्य आत्मनिष्ठ है।"***

वैज्ञानिक मनोवृत्ति का प्रभाव क्षेत्र

मानव सभ्यता का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि मानव के विकास में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण कारक है। 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक का काल जिसे हम **रिनेंसा (Renaissance)** (पुनर्जागरण + धर्म सुधार काल) कहते हैं, वह यूरोपियन इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ है। पुनर्जागरण वैज्ञानिक दृष्टिकोण के पुनर्जीवित होने का ही परिणाम था। वैज्ञानिक खोजों एवं अविष्कारों, औद्योगिक विकास, विकसित होती प्रौद्योगिकी आदि के फलस्वरूप मध्ययुगीन अंधकार काल की समाप्ति हुई और धार्मिक अंधविश्वासों पूर्वाग्रहों आदि के स्थान पर वैज्ञानिक मनोवृत्ति को बढ़ावा मिला।

वैज्ञानिक मनोवृत्ति का प्रभाव जीवन और जगत के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा है। यद्यपि यह प्रभाव अपने पूर्ण रूप में नहीं है। इसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

- **सामाजिक क्षेत्र**
  - लिंग समानता
  - अस्पृश्यता निवारण
  - रूढ़िवाद एवं कुरीतियों का निवारण
  - मानववादी प्रवृत्ति का विकास
  - इहलौकिकता पर बल
  - मानव के कल्याण हेतु मानव की क्षमता एवं महत्ता की स्वीकारोक्ति

- **आर्थिक क्षेत्र**
    - योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन
    - मानव संसाधन विकास
    - आर्थिक न्याय हेतु समुचित कराधान इत्यादि
- **धार्मिक क्षेत्र**
    - पंथ निरपेक्षता
    - इहलौकिकता
    - कट्टरता एवं सांप्रदायिकता का निराकरण
    - धार्मिक सहिष्णुता
- **राजनीतिक क्षेत्र**
    - लोकतंत्र
    - विधि का शासन
    - लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना
    - चुनावों की स्थिति, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका
    - स्वतंत्रता, समानता, न्याय के आदर्श की स्थापना
    - लोक कल्याणकारी राज्यों की स्थापना
    - राजनीतिक विकेन्द्रीकरण – पंचायतीराज

विज्ञान एवं मानव समाज का द्वन्द

सदियों पूर्व ग्रीक दार्शनिक सुकरात ने कहा था– ***"An unexamined life is not worth living"*** अर्थात् 'अनपरखा जीवन जीने योग्य नहीं है।' इस कथन को सार्थक बनाने के उपकरण आधुनिक विज्ञान से प्राप्त हुए। लेकिन यहाँ विडम्बना यह रही कि जिस रफ्तार से विज्ञान ने अपने विस्मयकारी अविष्कारों के द्वारा भौतिक जगत् अर्थात् मनुष्य के बाह्य जगत का रूपांतरण किया उसी गति से वह मानव के अंतर्जगत, मन के सोचने के तरीकों का, सामाजिक समझ का, सामाजिक व्यवस्था को रूपांतरण करने का और मानव के व्यक्तित्व एवं सामाजिक जीवन को नये ज्ञान के आधार पर पुनर्गठित करने की ओर अग्रसरित नहीं हुआ। समाज का बैलगाड़ी युग से रेल या जेट युग में प्रवेश तो हुआ परन्तु मन की गाड़ी बैल अर्थात् मध्ययुगीन संस्कार ही खींचते रहे।

आशय है कि विज्ञान के उद्भव के फलस्वरूप बाह्य जगत का रूपांतरण तो हुआ किन्तु मानव की सोच और प्रवृत्ति पर इसका व्यापक एवं सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा।

पश्चिम के पुनर्जागरण के पश्चात् वैज्ञानिक मनोवृत्ति को प्रतिष्ठता मिली। कुछ क्षेत्रों में इसके सकारात्मक परिणाम भी मिले परन्तु विज्ञान के विकास, खोजों एवं आविष्कारों का जितना लाभ पूंजीपति या सत्ताधारी को हुआ उतना उन व्यक्तियों एवं समुदायों को नहीं जो मानव कल्याण एवं मानव उत्थान के लिए समर्पित थे। यह प्रवृत्ति कुछ शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रही। जनमानस में इसका विस्तार नहीं हो पाया। परिणामस्वरूप विज्ञान द्वारा जीवन और जगत के वाह्य रूप के रूपांतरण और विकास के क्रम में विज्ञान वरदान की जगह अभिशाप नजर आने लगा और विज्ञान विरोध की बातें शुरू हो गई।

वस्तुतः यहाँ आवश्यकता विज्ञान के विरोध की नहीं है, बल्कि विज्ञान की हितकारी एवं विनाशकारी दोनों प्रकार की संभावनाओं के प्रति जागरूक रहने की है। आज इस संदर्भ में द्विमुखी प्रयास की आवश्यकता है–

(i) एक ओर विज्ञान का मानवीयकरण हो, तो

(ii) दूसरी ओर मानव चिंतन एवं संस्कृति का भी विज्ञानीकरण हो।

इस क्रम में विज्ञान ही विज्ञान का दोष निवारक बनेगा। वैज्ञानिक दृष्टि से ही यह संभव है। इस संदर्भ में नेहरू का यह कथन द्रष्टव्य है कि– *"जब तक हम वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास नहीं करेंगे, तब तक विज्ञान की जो कुछ देन है, उसका उपयोग गलत उद्देश्यों को लिए होता रहेगा। बिना वैज्ञानिक प्रवृत्ति के हम क्षणिक आवेश में आकर भावनाओं में बह सकते हैं और विज्ञान द्वारा उपलब्ध कराये गये ताकतवर हथियारों का इस्तेमाल गलत कार्यों में कर सकते हैं।"*

प्रगति (PROGRESS)

प्रगति का आशय है– 'प्रकृष्ट गति' अर्थात् 'उत्तम गति' यह वांछनीय परिवर्तन को इंगित करता है जिससे अभीष्ट मूल्यों की प्राप्ति होती है। दूसरे शब्दों में **सम्यक् दिशा में यथोचित परिवर्तन ही प्रगति** है। इसमें आदर्श रूप में स्थापित गंतव्य की ओर निरन्तर या उत्तरोत्तर योजनाबद्ध रूप से विकास की बात निहित होती है।

समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय की प्राप्ति सामाजिक-राजनीतिक जीवन का आदर्श है। यदि कोई समाज इसकी ओर निरन्तर बढ़ रहा है तो उसे प्रगतिशील समाज कहा जाता है। प्रगति में खुशहाली एवं समृद्धि का भाव निहित होता है।

प्रगति एक मूल्यात्मक अवधारणा है जिसमें मात्रात्मक उत्थान के साथ-साथ गुणात्मक उत्थान की भावना भी निहित होती है। प्रगति अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, अव्यवस्था से सुव्यवस्था की ओर, अशुभ से शुभ की ओर और अवैज्ञानिकता से वैज्ञानिकता की ओर बढ़ना है। सार रूप में प्रगति को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है–

"All around sustainable development is called progress" अर्थात् जीवन के विभिन क्षेत्रों में सतत् (दीर्घकालीन/मूल्य आधारित) विकास ही प्रगति है। मनुष्य की प्रगति प्रायः रूढ़ियों के परित्याग और सृजनात्मक कल्पना के व्यायाम द्वारा ही घटित होती है।

मार्क्स के अनुसार द्वंद्वात्मक गति से साम्यवादी समाज के निर्माण की ओर बढ़ना ही प्रगति का लक्षण है। उनके अनुसार प्रत्येक समाज आदिम साम्यवाद की अवस्था से, दासत्व समाज से, सामंती समाज से, पूंजीवादी समाज की अवस्था तक पहुंचता है। तत्पश्चात् सर्वहारा वर्ग की हिंसक क्रांति से समाजवादी अवस्था आती है और फिर साम्यवादी समाज की संरचना रूपी प्रगति की चरम स्थिति दिखाई देती है।

एम.एन. राय के अनुसार स्वतंत्रता मनुष्य का सर्वोच्च मूल्य है। अतः उनके अनुसार स्वतंत्रता की ओर बढ़ना ही प्रगति है जबकि बंधन, दमन और शोषण की ओर जाना अधोगति है।

गाँधी के अनुसार प्रगति नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों का मिश्रण है। नैतिक पक्ष से अभिप्राय है– सत्य, अहिंसा, निडरता, धार्मिक सहिष्णुता, सादा जीवन। सामाजिक पक्ष का अर्थ है– लिंग समानता, छुआछूत की समाप्ति, सांप्रदायिक सद्भाव आदि, जबकि आर्थिक विकास का अर्थ है– कुटीर एवं लघु उद्योगों का विस्तारण, विकेन्द्रीकरण, आर्थिक न्याय हेतु ट्रस्टीशिप की स्थिति।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रगति एक समग्रतावादी अवधारणा है जो जीवन के सभी पक्षों यथा – सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं नैतिक आदि से संबंधित है।

प्रगति और वैज्ञानिक मनोवृत्ति में एक गहरा रिश्ता है। प्रगति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति किसी भी आयोजन (Planning) से पूर्व अपनी शक्ति, संभावनाओं, श्रोतों और समस्याओं पर उचित रूप से विचार कर ले। इसके लिए व्यक्ति में वैज्ञानिक मनोवृत्ति (Scientific Temper) का होना आवश्यक है।

वस्तुतः बिना वैज्ञानिक मनोवृत्ति के उचित आयोजन (Planning) नहीं की जा सकती और बिना आयोजन के जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रगति करना असंभव है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रगति के लिए वैज्ञानिक मनोवृत्ति का होना आवश्यक है। विज्ञान तथा तकनीक में समृद्ध होने के कारण ही कुछ देशों (अमेरिका, जापान आदि) का तीव्रता के साथ विकास हुआ है।

अभी भी भारत में वैज्ञानिक चेतना का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है यही कारण है कि भारत में प्रगति की गति धीमी है।

विकास (DEVELOPMENT)

विकास की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि विकास का अर्थ संवृद्धि होता है तो कुछ अन्य विचारक इसे प्रगति या फिर आधुनिकीकरण (Modernisation) के रूप में लेते हैं। वस्तुतः विकास में संवृद्धि एवं आधुनिकीकरण का तत्व समाहित होता है। विकास का शाब्दिक अर्थ है - वृद्धि, उन्नति या प्रचुरता। विकास एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है, जो बहुपक्षीय है। प्रमुख विकास विचारक **वीडनर** (Weidner) के अनुसार- ***"सवृद्धि की वह प्रक्रिया जिसमें राष्ट्र-निर्माण व सामाजिक आर्थिक प्रगति होती है को विकास की प्रक्रिया कहा जाता है।"*** विकास की संकल्पना में निम्नलिखित घटक सम्मिलित होने चाहिए-

- सामाजिक न्याय,
- लोगों के जीवन-स्तर, स्वास्थ्य, सफाई, पोषाहार, शिक्षा, आयु-संभाविता आदि में सुधार,
- सामूहिक सुरक्षा, स्वाधीनता एवं राष्ट्रीय एकता,
- विकास कार्यों में लोगों की सहभागिता एवं उनको लाभ,
- आत्मनिर्भरता,
- सुशासन,
- प्राकृतिक संतुलन,
- स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय रूपी आदर्शों की ओर सदैव प्रस्थान,
- सामाजिक-आर्थिक विषमताओं में कमी।

प्रगति की अवधारणा विभिन्न कालों एवं संदर्भों में अलग-अलग रही है-

- 18वीं शताब्दी में प्रबोधन (Enlightenment) के समय प्रगति परम्परा से मुक्ति और निरंकुश सत्ता के प्रति विद्रोह का परिचायक थी।
- 19वीं शताब्दी में प्रगति समाज की संवृद्धि और प्राकृतिक संपदा के अधिकाधिक शोषण का पर्याय बनी।
- 20वीं शताब्दी में प्रगति सतत् विकास, गुणवत्तापूर्ण, मूल्यपूर्ण एवं अर्थपूर्ण जीवन का पर्याय बनी है। वर्तमान में भी यही स्थिति है।

सतत् विकास (SUSTAINABLE DEVELOPMENT)

इसका तात्पर्य है कि विकास वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति तो करे किन्तु इससे भावी पीढ़ी की अपनी जरूरतें पूरी करने एवं समस्या निदान की क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े। स्पष्ट है कि इस अवधारणा में वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के हितों में संतुलन एवं दोनों पीढ़ियों की सुरक्षा की बात निहित है। वस्तुतः ***सतत् विकास की अवधारणा, सहयोग, समन्वय एवं वर्तमान पीढ़ी के नैतिक उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्यबोध तथा भावी पीढ़ी के अधिकारों की सुरक्षा की भावना पर निहित है।*** इसमें मानवीय जीवन की गुणवत्ता में इस तरह से सुधार लाने की बात की जाती है जिससे कि प्रकृति की धारक क्षमता पर कोई प्रतिकूल असर न पड़े। इसमें मुख्यतः जल, खनिज, संपदा, बालू, पेड-पौधे, ऊर्जा आदि के दीर्घकालिक संरक्षण की बात की जाती है। इसमें प्रकृति-विजेता का नहीं अपितु प्रकृति-प्रेम, प्रकृति-अनुराग एवं प्रकृति सहयोग की भावना निहित है। वस्तुतः यह अवधारणा विकास के साथ-साथ प्रकृति एवं भावी पीढ़ी का भी पोषण करना चाहती है। यह संरक्षित विकास (Protected Development) के पक्ष में है। इसमें दो बातें निहित हैं-

(i) यह हमारी अपराध भावना को छूती है कि हमने प्रकृति का क्या हाल कर दिया है। इसमें एक प्रकार का कर्त्तव्यबोध का भाव विद्यमान है।

(ii) यह मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा है कि वह अपने बच्चों के भविष्य को उज्जवल बनाना चाहता है, उन्हें समुचित संरक्षण प्रदान करना चाहता है, अतः पर्यावरण संरक्षण करना चाहता है। इसमें प्रकृति सहयोग की भावना विद्यमान है।

सतत् विकास की अवधारणा में दोनों पक्ष शामिल हैं। सतत् विकास की अवधारणा के क्रम में उपलब्ध संसाधनों के समुचित दीर्घकालिक दोहन एवं उसके व्यवस्थित आबंटन का भाव निहित है। सतत् विकास का एक महत्वपूर्ण नारा है- ***विश्व स्तर पर विचार एवं स्थानीय स्तर पर कार्य (Think Globally, Act Locally).***

वैज्ञानिक प्रगति (SCIENTIFIC PROGRESS)

संकीर्ण रूप से वैज्ञानिक प्रगति को तकनीकी विकास एवं अविष्कारों तथा खोज का पर्याय मान लिया जाता है परन्तु यह वैज्ञानिक प्रगति का एक पक्ष विशेष मात्र है। व्यापक अर्थ में वैज्ञानिक प्रगति का आशय तकनीकी विकास के साथ-साथ व्यक्ति की सोच को वैज्ञानिक बनाते हुए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसकी अभिव्यक्ति से लिया जाता है। इस रूप में वैज्ञानिक प्रगति का आशय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में आदर्शों की ओर तर्कपूर्ण एवं व्यवस्थित रूप में विकास से लिया जाता है।

भारतीय संदर्भ में वैज्ञानिक मनोवृत्ति

भारतीय संदर्भ में वर्तमान काल में नेहरू ने वैज्ञानिक मनोवृत्ति की बात प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के माध्यम से देश के समग्र विकास हेतु उन्होंने देश में वैज्ञानिक मनोवृत्ति को बढ़ावा दिया। वे आग्रहपूर्वक कहते हैं कि हमें केवल भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान या रसायन शास्त्र के तथ्यों का सतही ज्ञान नहीं चाहिए, बल्कि हमारे भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होना चाहिए ताकि हम न केवल अच्छे नागरिक बन सकें, बल्कि अपने विचारों एवं व्यवहारों को समुचित ढंग से नियंत्रित भी कर सकें।

भारतीय समाज एक बहुधर्मी, बहुजातीय एवं बहुभाषीय समाज है। ऐसी स्थिति में सामाजिक विषमता को दूर करने, धार्मिक विभेद एवं प्रादेशिक झगड़ों का निपटारा कर उनकी सम्यक् प्रगति हेतु वैज्ञानिक मनोवृत्ति का होना आवश्यक है। इसके माध्यम से ही समाज में समरसता (Harmony) आ सकती है एवं रचनात्मकता संभव हो सकती है।

सांप्रदायिकता, छुआछूत, जातिप्रथा, देवदासी प्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, लैंगिक असमानता इत्यादि का केवल सरकारी उपायों के द्वारा पूर्णत: समाधान नहीं किया जा सकता। ऐसी समस्याओं के निदान हेतु संकीर्ण सोच को बदलना आवश्यक है। इस संदर्भ में वैज्ञानिक मनोवृत्ति की महत्ता निर्विवाद है।

नेहरू ने देश के आर्थिक विकास हेतु योजनाओं की कल्पना की एवं उसे कार्य रूप देने का प्रयास किया। यह उनके वैज्ञानिक मनोवृत्ति का ही परिणाम है। वस्तुत: भारत को एक मजबूत, आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी राष्ट्र बनाने तथा इसके समस्त नागरिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाकर समस्त राष्ट्रीय हितों की सिद्धि हेतु वैज्ञानिक मनोवृत्ति का होना आवश्यक है। इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51(क) (मौलिक कर्त्तव्य) के अंतर्गत यह कहा गया है कि- *"प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, ज्ञानार्जन एवं मानववाद की भावना का विकास करे।"*

नेहरू भारतीय संदर्भ में वैज्ञानिक मनोवृत्ति के महत्व को इंगित करते हुए अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज' (Discovery of India) में कहते हैं कि- *"आज सारे देशों और समुदायों में विज्ञान का प्रयोग आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है लेकिन विज्ञान का प्रयोग ही पर्याप्त नहीं है असली चीज है वैज्ञानिक मनोवृत्ति साहसिक किन्तु विवेकपूर्ण ज्ञान की दृष्टि, नये ज्ञान एवं सत्य की खोज, बिना जाचें-परखे किसी बात को न जानने का इरादा, नये तथ्यों को प्रकाश में पूर्व निर्णयों को बदलने की क्षमता, प्रचलित सिद्धांतों को आधार पर वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का सहारा, मन का दृढ़ अनुशासन- यह सब विज्ञान को लिए ही नहीं बल्कि जीवन सत्य को जानने और उसकी विभिन्न समस्याओं को हल करने को लिए भी आवश्यक है।"*

विज्ञान का क्षेत्र सीमित है। इसका उपयोग प्रत्यक्ष ज्ञान के क्षेत्र में किया जाता है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण केवल यहीं तक सीमित नहीं है। जवाहरलाल नेहरू वैज्ञानिक दृष्टिकोण को सर्वांगीण दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि- *"लेकिन जहाँ विज्ञान के तरीके काम नहीं देते, और जहाँ दर्शन है, और जहाँ ऊँचे दर्जे की भावुकता है, जहाँ आगे का विस्तृत क्षेत्र है, उस जगह भी वैज्ञानिक स्वभाव और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की जरूरत है।"*

एम.एन. राय ने भी अपने शिक्षा दर्शन के अंतर्गत वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific outlook) की चर्चा की है। नेहरू के समान एम.एन. राय का यह मानना है कि नागरिक गुणों के विकास, सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के निदान तथा समाज में सौहार्दपूर्ण वातावरण के लिए वैज्ञानिक मनोवृत्ति का होना आवश्यक है।

इसके बावजूद भारत में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का पूर्णरूपेण प्रचार-प्रसार नहीं हो सका है। इसके निम्नलिखित कारण हैं-

- भारत में सामाजिक मान्यताओं और रूढ़ियों के बहुत अधिक प्रभावी होने के कारण वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास के लिए अनुकूल वातावरण का न होना।
- भारतीय समाज पर धर्म का अत्यधिक प्रभाव होने के कारण वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकसित न हो पाना।
- विज्ञान एवं तकनीक का व्यापक प्रचार-प्रसार न होना।
- अनेक धार्मिक व नैतिक मान्यताओं जैसे कर्मफल, पुनर्जन्म, मोक्ष इत्यादि का सामान्य जनजीवन के मस्तिष्क में गहराई के साथ उपस्थित होना।

भारत में वैज्ञानिक मनोवृत्ति विकास हेतु क्या किया जाना चाहिए ?

- वैज्ञानिक शिक्षा का प्रसार-प्रचार
- वैज्ञानिक चेतना के उभार एवं विस्तार हेतु रेडियो, टीवी, फिल्म जैसे संचार माध्यम का उपयोग हो
- पोस्टर, स्लाइड, प्रदर्शनी इत्यादि द्वारा जागरूकता अभियान
- NGO की सहायता
- विचार गोष्ठियों का आयोजन
- व्यापक जन चेतना को बढ़ावा दिया जाए

बालकों में विभिन्न बातों को जानने की स्वाभाविक अभिलाषा होती है। उसका लाभ लेते हुए उनके सीखने की प्रवृत्ति को और प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इस क्रम में 'सिखाना' (Teaching) के साथ-साथ 'सीखना' (Learning) पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

3 शिक्षा / विद्या (Education)

- *सा विद्या या विमुक्तये*

  सच्ची शिक्षा मनुष्य की आत्मा को स्वतन्त्र करती है। आत्मा को स्वतन्त्र करने का अर्थ है कि वह मनुष्य को अज्ञान, ईर्ष्या तथा संकीर्ण विचारों के घेरे से निकालकर उसे उदार बनाती है।
- जितना हम अध्ययन करते हैं, उतना ही हमको अपने अज्ञान का आभास होता जाता है। *-विवेकानन्द*
- *आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः* *-ऋग्वेद*

  हमें लाभकर कल्याणकारी विचार चारों ओर से प्राप्त हों। विचारों को ग्रहण करने की यह उदार भावना लगातार हमारी संस्कृति में मौजूद है।
- शिक्षा के संबंध में गाँधीजी के विचार स्पष्ट थे। उन्होंने कहा है कि मैं पाश्चात्य संस्कृति का विरोधी नहीं हूं। मैं अपने घर के खिड़की दरवाजों को खुला रखना चाहता हूं जिससे बाहर की स्वच्छ हवा आ सके। लेकिन विदेशी भाषाओं की ऐसी आँधी न आ जाए कि मैं औंधें मुँह गिर पड़ूँ- गाँधीजी

- "शिक्षा का अर्थ, मै बालक अथवा मनुष्य में आत्मा, शरीर और बुद्धि के सर्वांगीण और सबसे अच्छे विकास से समझता हूँ।" *-गाँधी*

- *पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,*
  ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय। *- कबीर*

  अर्थ: कबीर कहते हैं- उच्च ज्ञान पा लेने से कोई भी व्यक्ति विद्वान नहीं बन जाता, अक्षर और शब्दों का ज्ञान होने के पश्चात् भी अगर उसके अर्थ के मोल को कोई ना समझ सके, ज्ञान की करुणा को ना समझ सके तो वह अज्ञानी है, परन्तु जिस किसी ने भी प्रेम के ढाई अक्षर को सही रूप से समझ लिया हो वही सच्चा और सही विद्वान है।

- शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना अथवा पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर लेना ही नहीं होता, अपितु शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मस्तिष्क की आंतरिक शक्तियों को विकसित, प्रशिक्षित एवं अनुशासित करने के साथ-साथ बालकों को स्वतंत्रता प्रदान कर रूढ़िवादिता के अंत तथा प्रकृति से निकट साहचर्य प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करना होता है। *-डॉ. राधाकृष्णन्*

- **शिक्षा का अर्थ है-** मनुष्य के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास करने की शक्ति। सच्चे अर्थ में मनुष्य वही है जिसका बौद्धिक, आत्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक एवं शारीरिक आदि सभी प्रकार का विकास हुआ हो, एक पक्षीय नहीं।

4 महिला सशक्तीकरण (Women Empowerment)

भारत के संविधान में लैंगिक समानता संबंधी प्रावधान संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्य तथा नीति-निर्देशक तत्वों में शमिल हैं। संविधान में न केवल समानता दी गई है बल्कि उनके हित में सकारात्मक विभेदकारी कदम उठाने की भी बात की गयी है। महिला सशक्तिकरण के तीन प्रमुख पक्ष है।।

1. आर्थिक सशक्तिकरण 2. सामाजिक सशक्तिकरण 3. राजनीतिक सशक्तिकरण

- *यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।*
  यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। *(मनुस्मृति3/56)*

जहाँ नारियों की पूजा (सम्मान) होती है, वहां समस्त देवता आनंदपूर्वक निवास करते हैं। जहाँ इनका आदर, सत्कार नहीं होता, वहां किए गए सारे कार्य निष्फल हो जाती हैं।

- "मैं किसी समुदाय के विकास का आकलन उस समुदाय की स्त्रियों द्वारा प्राप्त किये गए विकास के परिणाम से करूंगा।" *-डॉ. अम्बेडकर*
- "एक स्त्री जो यह समझती है कि एक घर चलाने में क्या समस्याएँ हैं, वह यह समझने के बहुत नज़दीक है कि एक देश चलाने में क्या समस्याएँ हैं?" *-मार्गरेट थैचर*
- "बिना महिलाओं की स्थिति में सुधार किये इस समाज का कल्याण संभव नहीं है, जैसे कि किसी पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना संभव नहीं है।" *-स्वामी विवेकानंद*

नारी परिवार, समाज और संस्कृति की धुरी है। किसी भी देश की संस्कृति उसका इतिहास वहाँ की महिलाओं के विकास की प्रगति और समृद्धि में परिलक्षित होता है। महिला सशक्तीकरण का अर्थ है-

- महिलाओं में आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना विकसित करना।

- महिलाओं की सकारात्मक छवि का निर्माण करना- इस कार्य द्वारा सामाजिक, आर्थिक जीवन में उनके योगदान को मान्यता दी जा सकती है।
- निर्णय लेने की क्षमता का पोषण व उसे उन्नत करना।
- विकास प्रक्रिया में समान भागीदारी सुनिश्चित करना।
- महिलाओं में कानूनी ज्ञान का विकास तथा स्वयं के अधिकारों संबंधी सूचनाओं तक उनकी पहुँच को सुनिश्चित करना।
- सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समान रूप से उनकी सहभागिता में वृद्धि हेतु प्रयासरत्।

लैंगिक समानता एक सामाजिक-राजनीतिक आदर्श है जो मानवीय सभ्यता व संस्कृति के विकास के साथ-साथ विकसित हुई है। लैंगिक समानता की स्थापना हेतु लिंग आधारित भेदों को दूर करना आवश्यक है।

लिंग-भेद का शाब्दिक अर्थ है- लिंग आधारित भेद-भाव या असमानता। चूंकि भेद-भाव सामान्यत: महिलाओं के साथ होता है, अत: यहाँ लिंग-भेद का आशय लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ किए जाने वाले भेद से है। कुछ अपवादात्मक स्थितियों को छोड़कर मानव समाज दो लिंगों में विभाजित हैं- (1) पुरुष और (2) स्त्री।

लिंग-भेद की अवधारणा को समझने के लिए यौन (Sex) व लिंग (Gender) के अंतर को समझना आवश्यक है। यौन का आशय पुरूष व नारी के मध्य के जैव वैज्ञानिक अंतर/प्राकृतिक अंतर से है। स्पष्टत: यौन एक जैविक (Biological) अवधारणा है। दूसरी ओर लिंग पुरूष व नारी के मध्य के इस मौलिक विभेद से जुड़े अनेक सामाजिक व सांस्कृतिक अर्थों एवं संदर्भों को इंगित करता है।

दूसरे शब्दों में स्त्री का एक विशेष प्रकार की जैविक संरचना के साथ जन्म लेना एक प्राकृतिक चीज है जिस पर उसका कोई वश नहीं है। लेकिन लिंग प्राकृतिक नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक रूप से गढ़ी हुई चीज है जो बदल सकती है और बदलती भी रही है। अगर लिंग प्राकृतिक होता तो फिर स्त्री व पुरूष की स्थिति सर्वत्र, हमेशा एक जैसी होती। लेकिन साक्ष्य यह बताते हैं कि विभिन्न समाजों में यह सम्बन्ध विभिन्न प्रकार का है तथा विभिन्न कालों में यह संबंध बदलता भी रहा है।

स्पष्टत: *लिंग-भेद का तात्पर्य जैविकीय या शारीरिक भेद से नहीं है बल्कि स्त्री व पुरूप के मध्य सामाजिक संदर्भों में कृत्रिम विभेद से है।* चूंकि यह भेद कृत्रिम है अत: इसे दूर किया जा सकता है। यहाँ लिंग-भेद को दूर करने का आशय यह है कि स्त्री व पुरूष दोनों को मनुष्य के रूप में समान अवसर, अधिकार, गौरव व गरिमा दी जाए।

दूर करना आवश्यक क्यों :

1. नैतिक दृष्टिकोण : सभी व्यक्तियों को यह नैतिक अधिकार है कि उन्हें भी अन्यों के समान अपने विकास का समान अवसर मिले। स्त्रियों को यह अवसर लैंगिक समानता के बिना प्राप्त नहीं हो सकता है।
2. सामाजिक दृष्टिकोण : समाज के सर्वांगीण विकास एवं सामाजिक समरसता के लिए यह आवश्यक है कि समाज के सभी लोग समाज हित व राष्ट्रहित में योगदान दें। इसके लिए आवश्यक है कि लिंग आधारित भेद समाप्त हो और महिलाओं को भी पुरूषों के समान अधिकार, अवसर व गरिमा मिले।
3. राजनैतिक दृष्टिकोण : स्वतंत्रता, समानता व न्याय रूपी आदर्श की प्राप्ति तभी सार्थक रूप से हो सकती है जब सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था में लिंग-समानता हो।
4. गाँधी जी : सर्वोदय की अवधारणा को सफल बनाने के लिए लिंग-विभेद को समाप्त करना आवश्यक है।

लिंग-भेद के आयाम या क्षेत्र

लैंगिक विभेद कुछ मातृप्रधान समाजों को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान रहा है। इसीलिए लैंगिक विभेद का अर्थ ही महिलाओं की निम्नतर या हीनतर स्थिति से लगाया जाता है। यह निम्नतर स्थिति या उसके प्रति नकारात्मक सोच जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखी जा सकती है।

पारिवारिक एवं सामाजिक क्षेत्र :

1. जन्म के पूर्व से विभेद (भ्रूण परीक्षण एवं भ्रूण हत्या):- यह लैंगिक अन्याय का घृणित रूप है

2. पालन-पोषण में विभेद 3. स्त्री की व्यक्तिगत पहचान नहीं 4. विवाह के बाद स्थिति में परिवर्तन (टाइटल परिवर्तन, सिंदूर लगाना, मंगलसूत्र पहनना) 5. परिवार का एक अभिन्न अंग न मानकर पराए धन के रूप में देखना।

भाषायी संदर्भ में :
1. सभी अच्छे / उच्च पदों का पुल्लिंग में होना (राष्ट्रपति, सभापति)
2. सभी गालियां / अपशब्द महिलाओं से संबंधित

आर्थिक क्षेत्र में :
1. समान कार्य के लिए महिलाओं को कम व पुरूषों को ज्यादा वेतन
2. सार्वजनिक क्षेत्रों में पुरूषों की भूमिका प्रधान
3. घरेलू कार्यों में महिलाओं की संलग्नता, इन्हें अनुत्पादक मानना।
4. अर्थव्यवस्था के संचालक के रूप में पुरूषों की प्रधान भूमिका।

राजनीतिक क्षेत्र :
1. सत्ता का संचालन पुरूषों द्वारा
2. नीति-निर्धारण में महिलाओं की भूमिका कम
3. संसद में महिलाओं की भूमिका कम।

धार्मिक क्षेत्र :
1. धार्मिक पंथों व संगठनों के प्रधान प्रायः पुरूष
2. विभिन्न धर्मों में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं को कम अधिकार
3. कुछ मंदिरों में महिलाओं के प्रवेश पर पाबंदी।

लैंगिक विभेद के समर्थन का आधार

जैविक अवधारणा पर आधारित तर्क या जैविक निर्धारणवाद का तर्क : इनके अनुसार लैंगिक विभेद का कारण स्त्री और पुरूष के बीच जैविक एवं प्राकृतिक भिन्नता का होना है। इनके अनुसार जो भेद प्राकृतिक है, वह अपरिवर्तनशील है। अतः इसके आधार पर उनके साथ विभेद करना उचित है। इस अवधारणा में जैविक या प्राकृतिक अंतर को ही महिलाओं के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में किए जा रहे भेद के आधार के रूप में स्वीकारा गया है।

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो व अरस्तु के मत में भी इसका समर्थन मिलता है। प्लेटों को पुरूष होने पर गर्व है। इसके लिए वह ईश्वर को धन्यवाद देता है। अरस्तु के अनुसार महिला कुछ निश्चित गुणों के अभाव के कारण ही महिला है। महिला में प्राकृतिक एवं जैविक रूप में कमियां विद्यमान हैं। ये अतार्किक, भावुक, आज्ञाकारी व शक्तिविहीन है। अरस्तू पुरूष में शक्ति, जीवन एवं गति मानते है और स्त्रियों के कल्याण हेतु उन पर पुरूषों के आधिपत्य को नैतिक औचित्य प्रदान करते हैं। इनके अनुसार महिलाओं का उत्थान व कल्याण पुरूषों के मार्गदर्शन में ही हो सकता है।

जैविक निर्धारणवाद में लैंगिक विभेद को उचित बताने के क्रम उनमें गुणात्मक विभेद एवं श्रम विभेद को भी स्थापित किया गया है। यहाँ बहादुरी, साहसिक कार्य, तर्क, निर्णय लेने की क्षमता इत्यादि को पुरूषों से सम्बन्धित किया गया व कोमलता, भावुकता, अतार्किकता, लज्जाशीलता इत्यादि को स्त्रीयोचित गुण के रूप में स्थापित किया गया। इन्हीं गुणों के आधार पर इनके कार्य एवं सामाजिक, राजनैतिक स्थिति व हैसियत को भी निर्धारित किया गया।

19वीं शताब्दी में फ्रांसीसी विचारक अगस्त कॉम्टे ने इस जैविकीय विचारधारा का समर्थन किया। इनके अनुसार नारी समुदाय की असमानतापूर्ण सामाजिक स्थिति का मूल कारण नारी शरीर की दुर्बलतापूर्ण प्राकृतिक स्थिति में निहित है। स्त्रियाँ स्वाभाविक तौर पर पारिवारिक जिम्मेदारियों, प्रजनन व शिशुपालन के लिए बनी है। अतः वे कभी भी पुरूषों के समकक्ष नहीं हो सकती।

लिंग विभेद का यह जीवशास्त्रीय दृष्टिकोण न केवल 19वीं व 20वीं शताब्दी का पुरूष स्वामित्ववादी सिद्धांत था, अपितु आज भी इसका प्रभाव विद्यमान है।

पित्तृतंत्र या पित्तृसत्ता पर आधारित स्थिति : पित्तृतंत्र का शाब्दिक अर्थ है- पिता का शासन। व्यापक स्तर पर पित्तृसत्ता का अर्थ है- "परिवार व समाज में पुरूष की प्रधानता और उनकी निरंतर अभिव्यक्ति"। इस पित्तृसत्तात्मक व्यवस्था का लाभ पुरूष सभी महत्त्वपूर्ण संस्थाओं व निर्णयों पर कब्जा करके और नारी वर्ग को इस शक्ति से वंचित करके उठाता है। यह पित्तृसत्तात्मक व्यवस्था विवाह एवं परिवार द्वारा सुदृढ़ की जाती है। इस व्यवस्था में प्रायः पुत्र को ही परिवार की सम्पत्ति का रखवाला और पिता के वंश को आगे बढाने वाला माना जाता है।

नारी उत्पादक संसाधनों तक पहुंच एवं स्वामित्व से पूर्णरूपेण वंचित हो जाती हैं। परिणामस्वरूप वह पुरुष पर पूर्णत: निर्भर हो जाती है।

नारीवाद एवं विभिन्न नारीवादी सिद्धान्त

विभिन्न प्रकार के नारी मुक्ति आंदोलन के लिए नारीवाद शब्द का प्रयोग होता है। नारीवाद एक ऐसी अवधारणा है जो यह मानती है कि समाज में महिलाओं की निम्नत्तर स्थिति का कारण लिंग (Gender) है। इस निम्नत्तर/हीनतर स्थिति को जैविक निर्धारणवादी स्त्री और पुरुष के मध्य के प्राकृतिक आधार पर न्यायोचित ठहराते हैं लेकिन नारीवाद का यह मानना है कि वास्तव में यह विभेद सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक शक्ति संरचना पर निर्भर है जिसका दोनों यौनों (Sex) के बीच के जैव वैज्ञानिक विभेद से कोई लेना-देना नहीं है। दूसरे शब्दों में नारीवादियों के अनुसार जैविक विभेद के आधार पर लिंग-भेद संबंधी नैतिक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

अत: नारीवादी पुरुषों के समान नारी की प्रतिष्ठा, अधिकार, अवसर, आदर व गरिमा की बात करते हैं।

नारीवादी नारी के अधिकारों को मानवाधिकारों की सामान्य श्रेणी में मान्यता देने, स्त्री को सामाजिक न्याय दिलाने, उसे परम्परागत पराधीनता से मुक्ति प्रदान करने, स्त्री-पुरूष समानता को स्वीकार करने, स्त्रियों की क्षमता, साहस और योग्यता को पहचानने तथा 'स्त्री' को 'मानव' के रूप में पहचान का समर्थन करने वाला एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह नारी के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन लाने का भी प्रयास करता है।

नारीवादी आंदोलन महिला उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं को समझने और उनका निदान करने की दिशा में एक निरंतर परिवर्तनशील विचारधारा है। नारीवाद से संबंधित विभिन्न विचारधाराएँ इस बात से पैदा होती हैं कि न्याय के लिए महिला को भी स्वतंत्रता और समानता दी जानी आवश्यक है।

पितृतंत्र या पितृसत्ता (Patriarchy):

'पितृतंत्र' या 'पितृसत्ता' का शाब्दिक अर्थ है - पिता का शासन। व्यापक स्तर पर पितृसत्ता का अर्थ है- परिवार या समाज में पुरुष की प्रधानता, प्रभुत्व व सर्वोच्चता की अभिव्यक्ति एवं संस्थानीकरण। इस शक्ति का लाभ पुरुष वर्ग सभी महत्वपूर्ण संस्थाओं और निर्णयों पर कब्जा करके और नारीवर्ग को इस शक्ति से वंचित करके उठाता है। इस प्रकार यहाँ पितृसत्ता को सामाजिक संरचना और क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें पुरुषों का स्त्रियों पर वर्चस्व रहता है। आमतौर पर नारियों पर पुरुष आधिपत्य या स्वामित्व का विस्तारीकरण ही पितृतंत्र है। इसमें पुरुष को नारी से उत्कृष्ट माना जाता है और उन्हें ही महत्वपूर्ण संस्थाओं में सत्ता-संचालन सौंपा जाता है। दूसरी ओर, यहाँ यह कहा जाता है कि नारी पुरुष की संपत्ति है और उसे पुरुष के नियंत्रण में ही रहना चाहिए। यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था विवाह तथा परिवार द्वारा सुदृढ़ की जाती है।

उदारवादी नारीवाद यह मानता है कि लैंगिक असमानता दोषपूर्ण समाजीकरण की उपज है। अत: इसके निदान हेतु वे सामा. जिक सुधार, कानूनी सुधार, महिलाओं के लिए समान अवसरों की उपलब्धता, सामाजिक क्षेत्र में भागीदारी एवं मानव के तौर पर इनकी संभावनाओं को पूरा करने हेतु अवसर प्रदान करने के पक्षधर हैं।

(i) मानव जाति का सदस्य होने के कारण महिलाएँ भी तार्किक हैं। अत: वे भी पुरुषों की तरह सभी प्राकृतिक अधिकारों की हकदार हैं। महिलाओं की भी सार्वजनिक जीवन में सहभागिता हो।

(ii) स्त्रियों पर आरोपित पतिव्रतता, आज्ञाकारिता, मृदुता, लज्जाशीलता, कोमलता आदि के गुण सामाजिक अनुकूलन के कारण उत्पन्न होते हैं, इनका कोई प्राकृतिक या जैविक आधार नहीं है।

(iv) महिलाओं की पुरुषों पर आर्थिक-सामाजिक निर्भरता को समाप्त किया जाए।

(v) पुरुषों के लिए हासिल अधिकारों एवं विशेषाधिकारों को महिलाओं तक विस्तारित किया जाए।

मिल के अनुसार स्त्रियों की दासता केवल कानून से दूर नहीं होगी बल्कि इसके लिए शिक्षा, रोजगार के समान अवसर, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में इनकी भागीदारी, विचार, जनमत, आदतों और संपूर्ण पारिवारिक जीवन में परिवर्तन करना होगा।

समाजवादी नारीवाद (Socialist Feminism)

समाजवादी नारीवाद नारी दमन को वर्ग समाज के साथ जोड़ते हैं। इनका मानना है कि समाज में वर्ग-विभाजन महिलाओं के उत्पीड़न एवं शोषण का कारण है। समाजवादी नारीवाद का यह मानना है कि वर्तमान समाज के ढाँचे में बिना संरचनात्मक परिवर्तन किए लैंगिक समानता स्थापित नहीं की जा सकती। इसके अनुसार पूँजीवाद और पितृसत्ता एक-दूसरे को मजबूती प्रदान करते हैं। अत: वे लैंगिक समानता की स्थापना के लिए पूँजीवाद की समाप्ति की बात करते हैं। उत्पादन और वितरण प्रणाली पर सर्वहारा वर्ग के नियंत्रण तथा अन्त में वर्गहीन समाज की स्थापना से इस आदर्श की प्राप्ति की जा सकती है।

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र का भेद असमानता को बढ़ावा देता है। समाजवादी नारीवाद इस विभाजन को समाप्त कर निजी कार्यों के मूल्य एवं महत्व की बात करते हैं जो सामाजिक दायरों में लागू होते हैं। पूँजीवाद गृहणी के घरेलू कार्यों को अनुत्पादक मानता है और बाहरी कार्यों को उत्पादक, चूँकि महिलाएँ सार्वजनिक उत्पादन प्रक्रिया से अलग निजी घरेलू कार्यों तक सीमित रहती हैं, इससे उनके शोषण को बढ़ावा मिलता है। यहाँ समाजवादी नारीवाद का कहना है कि पूँजीवाद जिस प्रकार अतिरिक्त मूल्य के दोहन के जरिए मजदूरों का शोषण करता है उसी प्रकार पुरुष महिलाओं के घरेलू श्रम का कुछ भी मुआवजा दिए बिना इससे लाभान्वित होता रहता है।

इसलिए एगेंल्स का कहना है कि नारीमुक्ति तब तक संभव नहीं हो सकती जब तक महिलाएँ घरेलू कार्य छोड़कर घर के बाहर मजदूरी वाले काम स्वीकार नहीं करती। इस प्रकार समाजवादी नारीवाद का यह मानना है कि पूँजीवादी शासन प्रणाली एवं पुरुष वर्चस्व शोषण को बढ़ावा देता है।

समाजवादी नारीवाद यह मानता है कि स्त्री समुदाय की मुक्ति में पहला कदम पूँजीवादी व्यवस्था का खात्मा है।

उग्र नारीवाद (Radical Feminism)

इसका उद्देश्य है लिंगों के बीच व्याप्त तमाम विभेदों को उद्घाटित किया जाए और उनके उद्घाटन के माध्यम से महिलाओं में जागृति लाकर उनकी स्वतंत्र पहचान को स्थापित किया जाए।

सीमोन द बुआ का कहना है कि –*''औरत पैदा नहीं होती, बल्कि बना दी जाती है।''* अर्थात् स्त्री सुलभ गुण-दोष या व्यक्तित्व लिंग भेद के प्राकृतिक आधार पर नहीं है। प्राकृतिक तौर पर उनमें वैसे गुण या दोष नहीं पाये जाते, बल्कि क्रमिक संस्कार, शिक्षा एवं पालन-पोषण के आधार पर ऐसे गुण उन पर आरोपित कर दिये जाते हैं।

लिंग समानता की स्थापना हेतु क्या किया जाना चाहिए?

(i) महिलाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण (पुरुषों की सोच) को बदलने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(ii) स्त्री की व्यक्ति के रूप में पहचान स्थापित की जाए।

(iii) समाज में होने वाले मूलभूत परिवर्तन से महिलाओं को जोड़ा जाए।

(iv) सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाई जाए।

(v) महिला जागरूकता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

(vi) संचार माध्यम इत्यादि के द्वारा महिला अधिकारों एवं इससे संबंधित पक्षों का प्रसारण किया जाना चाहिए।

(vii) राजनीतिक क्षेत्र में महिला आरक्षण की बात को लागू किया जाए।

(viii) आर्थिक रूप से उन्हें स्वावलंबी बनाया जाए।

(ix) महिलाओं को शक्ति एवं साधन संपन्न बनाया जाए।

(x) महिला उत्थान हेतु NGO's की मदद ली जाए।

महिलाओं की शिक्षा पर विशेष काम किया जाए। जब पुरूष शिक्षित होता है तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है और जब एक स्त्री शिक्षित होती है तो एक पूरा परिवार शिक्षित होता है, क्योंकि एक शिक्षित महिला अपने समस्त परिवार की शिक्षा व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अब नारियों को मुक्ति नहीं, सहानुभूति नहीं बल्कि सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक अधिकारों को देने की वकालत की जा रही है। नारी सशक्तिकरण के संदर्भ में नारियों को शक्ति, साधन एवं अवसर उपलब्ध कराकर उनके आत्म-गौरव एवं आत्म-सम्मान को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

उद्धार एवं सहानुभूति बनाम अधिकार एवं आत्मगौरव

वर्तमान समय में नारीवादी आंदोलन स्वयं नारियों के द्वारा नारियों के हित में चलाया जा रहा है इसमें -

1. उद्धार के स्थान पर अधिकारों पर बल दिया जा रहा है।
2. दया व सहानुभूति के स्थान पर आत्म सम्मान व आत्मगौरव की बात की जा रही है।

आधुनिक नारीवादी विचारकों का यह मानना है कि पुरूषों द्वारा व्यक्त नारीवादी विचार या उनके द्वारा किया गया कार्य नारियों के उद्धार व सहानुभूति की भावना से युक्त है जो नारियों के अधिकार बोध व आत्मसम्मान को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। पुरूष न तो कभी नारियों को वास्तविक अधिकार प्रदान कर सकता है और न ही उनकी भावना को समझ सकता है। पुरूष अधिकार इसलिए नहीं प्रदान कर सकते, क्योंकि इससे उनका वर्चस्व टूटेगा। अतः नारीवादियों का यह कहना है कि नारियों को स्वयं आगे बढ़कर अपने अधिकार लेने होंगे। पुरूष उसे स्वेच्छा से अधिकार नहीं देगा। इस रूप में नारीवादी उद्धार की बजाय अधिकार एवं सहानुभूति की बजाय आत्मगौरव व आत्मसम्मान की प्रतिष्ठा की बात करते हैं।

5 राष्ट्रीय एकीकरण (National Integration)

एकीकरण का आशय सबका विलय करना नहीं है बल्कि विभिन्न मत, भिन्नताओं एवं धर्मों के बीच सामंजस्य बनाये रखना है, ताकि राष्ट्र की एकता एवं अखंडता प्रभावित न हो।

- **''लोकतंत्र को**
  लाठी में जूते की तरह लटकाए
  चले जा रहें है सभी
  सीना फुलाए।'' ***-सर्वेश्वर दयाल सक्सेना***
- ''अगर हम लोकतंत्र की सच्ची भावना का विकास करना चाहतें है तो हम असहिष्णु नहीं हो सकते। असहिष्णुता से पता चलता है कि हमें अपने उद्देश्य की पवित्रता में पूरा विश्वास नहीं है।'' ***-महात्मा गांधी***
- ''बहुमत का शासन जब ज़ोर ज़बर्दस्ती का शासन हो जाए तो वह उतना ही असहनीय हो जाता है जितनी की नौकरशाही।'' ***-महात्मा गांधी***
- ''असली लोकतंत्र तब है जब वहाँ आम जन का शासन हो, न कि पूंजीपतियों का।'' ***-अरस्तू***
- ''हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि लोकतंत्र में सरकार हमारे बीच से है न कि कोई एलियंस। लोकतंत्र का मतलब प्रेसीडेंट, सीनेटर या तमाम पार्टियाँ अथवा सरकारी कर्मचारी नहीं बल्कि देश के मतदाता हैं।''- ***फ्रैंकलिन डी. रूज़वेल्ट***
- ''एक व्यक्ति से बेहतर निर्णय दो लोग लेते हैं और उससे बेहतर दो से ज्यादा।'' ***-अरस्तू***
- ''अगर समाज में 99 व्यक्तियों की राय 1 व्यक्ति के खिलाफ है तो भी उस व्यक्ति को सोचने व कहने की पूरी आज़ादी होनी चाहिये। कोई भी मौलिक विचार इसी तरह पैदा होता है। अगर विचार गलत होगा तो धीरे-धीरे अपने आप समाप्त हो जाएगा किंतु यदि सही हुआ तो समाज के विकास में बड़ी भूमिका निभाएगा।'' ***-जे.एस.मिल***

6 'धर्म' (Dharma) का 'रिलीजन' (Religion) से अंतर

यद्यपि लोक प्रचलित भाषा में 'रिलीजन' के लिये 'धर्म' शब्द रूढ़ हो गया है, परन्तु भारतीय संस्कृति में 'धर्म' का वह अर्थ नहीं लिया जाता जो अंग्रेजी में 'रिलीजन' शब्द का है। भारतीय संदर्भ में 'धर्म' पाश्चात्य संदर्भ में प्रचलित 'रिलीजन' से भिन्न है। भारतीय संदर्भ में धर्म को शाश्वत, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के रूप में देखा गया है। यहाँ धर्म का आशय नैतिकता, स्व-कर्तव्यपालन, सद्-आचरण, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों आदि से है। धर्म में नैतिक मूल्यों के संरक्षण, नियमानुकूल सुखभोग, सामाजिक सदाचार एवं कर्त्तव्य-बोध का भाव निहित है। इसे हम निम्नलिखित तथ्य बिंदुओं में देख सकते हैं-

(1) भारतीय परम्परा में चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) माने गये हैं। यहाँ धर्म का आशय मूल्यपूर्ण जीवन से है।

(2) मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं। ये हैं- धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य एवं अक्रोध।

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यम् अक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।" (मनुस्मृति)

(3) महाभारत में यह कहा गया है कि ''धारणात् धर्मम् इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः'' अर्थात् जो व्यक्ति को, समाज को, जनसाधारण को धारण करे, वही धर्म है।

(4) गीता में कहा गया है कि-

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।'' (4/7-8)

''जब-जब धर्म की हानि (मूल्यों का पतन, कर्त्तव्यों की उपेक्षा) होती है, और अधर्म (पाप कर्मों में लिप्तता) बढ़ता है, तब-तब मैं सज्जनों के कल्याणार्थ एवं दुर्जनों के विनाश के लिये अवतरित होता हूँ।''

(5) नीतिकारों का कहना हैं कि- ''धर्मविहीन मनुष्य पशु के समान है।''

(6) वैशेषिक दर्शन में यह कहा गया है कि जिससे भौतिक कल्याण और आध्यात्मिक उत्थान दोनों हों, वही धर्म है (''यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः'')।

(7) तुलसीदास भी यह कहते हैं कि ''परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।'' अर्थात् दूसरों की भलाई के समान अन्य कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है और दूसरों को कष्ट देने के जैसा अन्य कोई निम्न पाप नहीं है।

(8) 'आचारः परमो धर्मः' (नैतिक नियमों के अनुसार आचरण करना ही परम धर्म है), 'अहिंसा परमो धर्मः' (अहिंसा सबसे उत्तम धर्म है), 'नहि सत्यात् परोधर्मः'' (सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है) 'धर्मराज युधिष्ठिर' इत्यादि संदर्भ भी धर्म के नैतिक एवं मूल्यात्मक पक्ष को ही इंगित करते हैं।

(9) गाँधी भी धर्मयुक्त राजनीति की बात करते हैं। उनके अनुसार- "धर्मविहीन राजनीति नितान्त निंदनीय है।" यहाँ धर्म का आशय नैतिक मूल्यों से है।

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'धर्म' शब्द रिलीजन के अर्थ में स्वीकृत न होकर मूल्य, कर्त्तव्य आदि रूपों में वर्णित है। धर्म न तो किसी विशेष दैवीय शक्ति के प्रति प्रतिबद्ध है और न ही वह किसी मजहबी संगठन के घेरे में बन्द है। यही कारण है कि जब पाश्चात्य अवधारणा **'सेक्यूलरिज्म' (Secularism)** का भारतीय संविधान की प्रस्तावना में हिन्दी रूपान्तरण किया गया तब इसके विकल्प के रूप में 'पंथ-निरपेक्षता' शब्द का प्रयोग किया गया, धर्म-निरपेक्षता शब्द का नहीं, क्योंकि भारतीय संदर्भ में 'धर्म' के अर्थ को ध्यान में रखकर धर्म से निरपेक्ष या तटस्थ नहीं हुआ जा सकता।

स्पष्ट है कि 'धर्म' की अवधारणा परम्परागत पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा स्वीकृत 'रिलीजन' की तुलना में अधिक व्यापक है। 'रिलीजन' की अवधारणा में प्रधानतः अलौकिक ईश्वर तथा उसके प्रति मनुष्य की उपासना, प्रार्थना आदि पर बल है। धर्म की अवधारणा में नैतिक मूल्य, सदाचार एवं स्वकर्त्तव्य पालन का भाव प्रधान रूप से समाहित हो जाता है। इसलिए भारतीय परम्परा में जैन, बौद्ध आदि को 'धर्म' कहने में किसी प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। यद्यपि कि यहाँ मूलतः किसी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है।

7 पंथनिरपेक्षता (Secularism)

(सामान्य बोल-चाल की भाषा में धर्मनिरपेक्षता शब्द का अधिक प्रयोग)

पंथनिरपेक्षता (Secularism) एक विशेष प्रकार का मानववादी जीवन दर्शन है जिसका लोकतांत्रिक मूल्यों में महत्वपूर्ण स्थान है। यह नैतिकता, शिक्षा, राजनीति, प्रशासन, कानून आदि सभी को धर्म एवं आध्यात्म से पृथक तथा स्वायत्त मानता है। सामाजिक, राजनैतिक दृष्टिकोण से पंथनिरपेक्षता का अर्थ है कि- **'सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों का निर्देशन रिलीजन न करे, वहाँ किसी विशेष रिलीजन (पंथ) का प्रभाव या हस्तक्षेप न हो।'** दूसरे शब्दों में सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों से पंथों का विलगाव हो, भले ही उस राज्य के नागरिक या उस समाज के व्यक्ति किसी विशेष पंथ या विभिन्न पंथों को स्वीकार करते हों। पंथनिरपेक्षता की इस अवधारणा में सामाजिक, राजनैतिक क्रियाकलापों के संचालन के क्रम में कानून की सर्वोच्चता स्वीकार की जाती है, धर्म की नहीं।

साधारणतः पाश्चात्य संदर्भ में पंथनिरपेक्षता के विचार को धर्मों के प्रति तटस्थता, उपेक्षा, उदासीनता (Indifference) या विरोध के रूप में स्वीकार किया जाता है, जबकि भारतीय संदर्भ में पंथनिरपेक्षता को पंथविरोध के रूप में न लेकर सर्वधर्म समभाव के रूप में मुख्यतः स्वीकार किया जाता है।

पंथनिरपेक्ष राज्य का उल्टा थियोक्रेटिक या धर्मतंत्रात्मक राज्य होता है। यह राज्य एक धर्मविशेष से संबद्ध होता है और इसके कायदे-कानून धार्मिक पुस्तकों या धर्माचार्यों के आधारों पर निर्मित होते हैं।

पंथनिरपेक्षता का अर्थ है-

(i) राज्य सत्ता पर रिलीजन (पंथ) के प्रभाव से मुक्ति (ii) राजनीतिक क्षेत्र से पंथ का बहिष्करण

पंथनिरपेक्षता की अवधारणा के दो पक्ष हैं- (i) नकारात्मक (ii) सकारात्मक

- नकारात्मक अर्थ में इसके दो संदर्भ हैं-

  (i) धर्म के प्रति तटस्थता, उपेक्षा, उदासीनता या विरोध का भाव।

  (ii) राजनैतिक एवं सामाजिक क्रियाकलापों एवं गतिविधियों को धर्म के प्रभाव एवं हस्तक्षेप से मुक्त करना।

- सकारात्मक अर्थ में पंथनिरपेक्षता का आशय वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं बौद्धिक दृष्टिकोण को प्राथमिकता प्रदान करना है। इसमें इहलौकिकता पर जोर है। पंथनिरपेक्षता का मूल संदेश है- **"इसी संसार और मनुष्य के वर्तमान जीवन के विषय से विचार करो, दैवीय शक्तियों व परलोक में नही।"** इस रूप में पंथनिरपेक्षता मानववाद पर आधारित है।

पंथनिरपेक्षता के प्रमुख तत्व या विशेषताएँ

पंथनिरपेक्षता के मूल तत्व हैं- धर्म से राज्य का, शिक्षा से धर्म का, धार्मिक सिद्धान्त एवं रूढ़िवादी रीतिरिवाजों से राजनीति का तथा पुरोहित वर्ग के प्रभाव से सार्वजनिक जीवन का पृथक्करण।

- जीवन और जगत की समस्याओं के समाधान के क्रम में धर्म की भूमिका को न मानते हुए उससे उदासीन रहना।
- अलौकिक एवं अतीन्द्रिय सत्ताओं के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हुए केवल इहलौकिकता में विश्वास।

- विज्ञान के नियमों एवं सिद्धांतों में विश्वास करते हुए मानव जीवन की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास। इस क्रम में हठधर्मी धार्मिक सिद्धान्तों को अस्वीकार करते हुए तर्कसंगत सिद्धान्तों को उचित ठहराना तथा अविवेकी, मूर्खतापूर्ण, रहस्यात्मक रूढ़ियों का उन्मूलन करना।
- किसी नागरिक को किसी धर्म के कारण कोई विशेष कर (Tax) या जुर्माना नहीं देना होगा। साथ ही धर्म के आधार पर कोई राष्ट्रीय पुरस्कार (Reward) या विशेषाधिकार (Privilege) प्राप्त नहीं होगा।
- वैचारिक स्वतंत्रता एवं तर्कयुक्त चिंतन पर बल।
- मनुष्य के वर्तमान जीवन, मनुष्य की बुद्धि एवं मानवीय क्षमता में विश्वास की प्रधानता।
- पंथनिरपेक्षता की यह मूलभूत मान्यता है कि नैतिकता धर्म से पूर्णत: स्वतंत्र है। इसके अनुसार धर्म के केन्द्रिय प्रत्ययों-ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, नरक आदि पारलौकिक सत्ताओं में विश्वास किये बिना भी मनुष्य नैतिक जीवन व्यतीत कर सकता है। अत: नैतिकता को अनिवार्यत: धर्म पर आधारित मानना गलत है।

पंथनिरपेक्षता बनाम नैतिकता

पंथनिरपेक्षतावाद का यह मानना है कि नैतिकता धर्म से पूर्ण स्वतंत्र है। इसके अनुसार धर्म ईश्वर, आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक इत्यादि पारलौकिक सत्ताओं एवं विचारों पर आधारित है। परन्तु मनुष्य इन सत्ताओं में विश्वास किये बिना भी नैतिक दृष्टिकोण से उन्नत जीवन व्यतीत कर सकता है। मनुष्य अपनी विवेक-शक्ति एवं तर्कशक्ति के आधार पर मानवीय हित को ध्यान में रखते हुए नैतिकता के मानदण्डों को स्थापित कर सकता है।

भारतीय संदर्भ में पंथनिरपेक्षता

भारत में पंथनिरपेक्षता शब्द का प्रयोग केवल राज्य के संदर्भ में किया गया है। इसलिए हमारे देश में धर्मनिरपेक्ष राज्य शब्द तो कहा जाता है, परन्तु पंथनिरपेक्ष समाज नहीं। इसका कारण यह है कि भारतीय संदर्भ में पंथनिरपेक्षता की अवधारणा पश्चिमी संदर्भ से भिन्न है। ***भारतीय पंथनिरपेक्षता मुख्यत: साम्प्रदायिकता विरोधी विचारधारा मानी जाती है।*** पश्चिम के 'Secularism' में परम्परागत धर्मों के प्रति उपेक्षा, तटस्थता या विरोध का भाव निहित है। किन्तु जब इस 'Secularism' का अनुवाद हम धर्मनिरपेक्षता से करते हैं तो हम इसे परम्परागत रूप से भारतीय संस्कृति में प्रचलित **'धर्म' (Dharam)** से नहीं ले सकते, क्योंकि भारतीय परम्परा में इसका अभिप्राय 'स्वकर्त्तव्य पालन' या नैतिक सद्कर्मों से है। अत: पंथनिरपेक्षता में 'धर्म' का आशय भारतीय संदर्भ में लेने पर सद्गुणों एवं कर्त्तव्य-पालन से तटस्थता या निरपेक्षता का भाव उभरेगा। इसी समस्या से बचने हेतु इसे भारत में **'पंथनिरपेक्षता'** कहा गया जिसका अभिप्राय प्रचलित पंथ/सम्प्रदाय से राजनीति का पृथक्करण या तटस्थता है अर्थात् भारत के संदर्भ में यदि समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र में पंथनिरपेक्षता का उच्चारण किया जाए तो इसका अभिप्राय पंथ/सम्प्रदायों से तटस्थ होना माना जायेगा।

भारतीय संदर्भ में पंथनिरपेक्षता की अवधारणा के दो पक्ष हैं- (i) नकारात्मक (ii) सकारात्मक

नकारात्मक अर्थ में इसका आशय है कि राजनीति, अर्थव्यवस्था, नैतिकता, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों से धर्म को दूर किया जाए, इसके हस्तक्षेप से बचाया जाए। राज्य का कोई अपना धर्म न हो, वह धर्माधारित न हो।

पंथनिरपेक्षता के सकारात्मक पक्ष के दो संदर्भ हैं-

(1) सभी धर्मों का समान रूप से आदर एवं संरक्षण हो। आशय है कि राज्य सभी धर्मों को समान स्वतंत्रता व सुरक्षा प्रदान करेगा तथा वह नागरिकों की धार्मिक भावनाओं का ध्यान रखेगा। इससे सर्वधर्म समभाव की अवधारणा चरितार्थ होती है।

(2) पंथनिरपेक्षता का दूसरा पक्ष स्वभाव या दृष्टिकोण से संबंधित है। इसमें बौद्धिक या वैज्ञानिक उपायों के द्वारा मानव कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करने की बात निहित है। यहाँ जीवन और जगत की समस्याओं के समाधान हेतु

स्वतंत्र बौद्धिक चिंतन को महत्व दिया गया है। इसी दृष्टिकोण से भारतीय संविधान में 51(क) मौलिक कर्त्तव्यों के अंतर्गत वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं मानववाद का विकास नागरिकों का कर्त्तव्य माना गया है।

स्पष्ट है कि **भारत में पंथनिरपेक्षता का अभिप्राय 'धर्मविहीन' या 'धर्मविरोधी' दृष्टि नहीं है** अपितु सभी धार्मिक विश्वासों व मान्यताओं की समान रूपेण स्वतंत्रता है। वस्तुतः यह एक असांप्रदायिक राज्य की स्थिति को इंगित करता है। भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं है। राज्य पंथनिरपेक्ष है। सभी धर्मों का समान आदर एवं महत्व इसकी स्वरूपगत विशेषता है। यहाँ सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता एवं सहअस्तित्व का भाव प्रकट होता है। **भारत में पंथनिरपेक्ष राष्ट्र होने के संबंध में निम्न बिंदु उभरकर सामने आते हैं-**

- भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं है।
- धर्म, आस्था व विश्वास को जीवन के व्यक्तिगत पक्ष के रूप में मान्यता।
- धर्म, मूल, वंश, जाति एवं जन्म स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध।
- धार्मिक रीति-रिवाजों एवं सिद्धान्तों से राजनीति का पृथक्करण
- वैज्ञानिक मनोवृत्ति व तार्किकता की स्वीकृति।
- धर्मेत्तर लोकतंत्र की स्थापना।
- व्यक्ति के धर्म पर विचार किये बिना एक नागरिक के रूप में उसके साथ व्यवहार।
- हठधर्मी, अविवेकी, सार्वजनिक हित में बाधक, धार्मिक सिद्धान्तों की अस्वीकृति। राज्य इस रूप में धर्म के लौकिक पक्षों में हस्तक्षेप कर सकता है। उदाहरणस्वरूप- सतीप्रथा। राज्य ऐसे मामलों में हस्तक्षेप का आधार यह देता है कि ये कुरीतियाँ धर्म के मूल अंश नहीं हैं, बल्कि सामाजिक विकृतियाँ हैं।

संवैधानिक स्थिति

1. संविधान की प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग हुआ है व भारत को पंथनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है।
2. संविधान धर्म व जाति का भेदभाव किये बिना नागरिकों को समानता का अधिकार देता है। (अनु. 14-17)।
3. भारत में सभी नागरिकों को समान मानते हुए विश्वास एवं धर्म की स्वतंत्रता दी गयी है। इच्छानुसार किसी भी धर्म का पालन, आचरण एवं शान्तिपूर्वक, सीमाबद्ध प्रचार-प्रसार करने का अधिकार दिया गया है। (अनु. 25)।
4. धार्मिक कार्यों में राज्य का कोई हस्तक्षेप नहीं। चाहे कोई संगठन बनाये, धार्मिक शिक्षा दे। (अनु. 26-27)।

   किन्तु राज्य द्वारा आंशिक या पूर्णरूपेण सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान धार्मिक शिक्षा नहीं दे सकते। (अनु. 28)।
5. राज्य किसी भी धर्म या समुदाय पर कोई संस्तुति नहीं थोपेगा। वे इच्छापूर्वक अपनी शिक्षण संस्थाएँ खोल सकते हैं एवं इन्हें अनुदान देने में राज्य भेदभाव नहीं करेगा। (अनु. 29)।

स्पष्ट होता है कि भारतीय पंथनिरपेक्षता एक गतिशील अवधारणा है जिसमें राजनीति में तो धार्मिक हस्तक्षेप की मनाही है, किन्तु सामाजिक कल्याण के नाम पर राज्य धर्म में हस्तक्षेप कर सकता है। स्पष्ट है कि यहाँ धार्मिक स्वतंत्रता **"सार्वजनिक शांति, नैतिकता और स्वास्थ्य"** की सीमाओं में ही दी जाती है।

किन्तु इन तथ्यों एवं परिस्थितियों के होते हुए भी पंथनिरपेक्ष सिद्धान्तों का निर्वहन, संचालन एवं पालन भारतीय संदर्भ में पूरी तरह से नहीं हो पाया है। यहाँ भारत के पंथनिरपेक्ष राष्ट्र होने की अवधारणा पर निम्न आधारों पर आलोचना की जाती है-

- पंथनिरपेक्षता भारतीय राजनीतिक शब्दावली का एक प्रमुख पक्ष है। किन्तु इसका निश्चित, स्पष्ट एवं सर्वमान्य अर्थ निर्धारित नहीं है। नेहरू जहाँ पंथनिरपेक्षता का आशय सभी धर्मों के प्रति तटस्थता मानते हैं वहीं गाँधी पंथनिरपेक्षता का अभिप्राय सभी धर्मों के प्रति सकारात्मक समभाव से लेते हैं।

- पंथनिरपेक्षता के व्यावहारिक एवं वैधानिक स्वरूप में विरोधाभास है। यहाँ एक ओर तो व्यक्ति को अपने धर्म के प्रचार-प्रसार की छूट दी गई है, उन्हें संरक्षण दिया गया है तो दूसरी ओर राज्य को धर्मनिरपेक्ष कहा गया है। परन्तु चूँकि राज्य व्यक्तियों द्वारा ही संचालित होता है। अत: इन दोनों के मध्य विरोध एवं भ्रम उभरकर सामने आ जाता है।
- समान आचरण संहिता का अभी तक लागू न हो पाना जिससे अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिक आज भी विवाह, उत्तराधिकार एवं सम्पत्ति आदि के विवादों पर सामान्य कानून से अलग अपने परम्परागत धार्मिक कानूनों को ही लागू करते हैं। अलग-अलग धार्मिक कानून स्वीकारना धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ है।
- सभी धर्मों के प्रति समान आदर और सभी धार्मिक समुदायों के प्रति उदारता के नाम पर अंतत: हम बहुसाम्प्रदायिकता का सामंजस्यपूर्ण स्वरूप ही प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि पश्चिमी विचारक भारतीय पंथनिरपेक्षता पर बहु-साम्प्रदायिक होने का आरोप लगाते हैं।

भारत के पंथनिरपेक्ष राष्ट्र के स्वरूप को यदि हम समझना चाहें तो राष्ट्र के स्तर पर पंथनिरपेक्षता स्वीकार्य है एवं समाज व व्यक्तिगत जनमानस के बीच सर्वधर्म समभाव रूपी धार्मिक सहिष्णुता को अपनाने की अपेक्षा की जाती है।

पंथनिरपेक्षता को मजबूत बनाने हेतु क्या किया जाना चाहिए?

- समाज में तार्किक एवं वैज्ञानिक मनोवृत्ति की स्वीकृति एवं विकास हो।
- समुचित एवं सौहार्द्रपूर्ण वातावरण पैदा कर समान नागरिक संहिता लागू करना।
- शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक समुदाय के प्रभुत्व से मुक्ति। इस क्रम में किसी भी वर्ग के संस्थान को सरकारी संरक्षण न दिया जाए।
- मानवता रूपी धर्म को प्रोत्साहन दिया जाए। परम्परागत धर्मों के पारलौकिक पक्ष को कम करके मानववादी पक्ष को बढ़ावा दिया जाए।
- शिक्षण संस्थाओं में धर्म-दर्शन की पढ़ाई अनिवार्य कर दी जाए ताकि लोगों को अपने धर्म के नकारात्मक पक्ष के साथ-साथ दूसरे धर्मों के सकारात्मक पक्ष की जानकारी हो जाए।
- धर्म प्रचार की स्वतंत्रता खत्म की जाए।
- व्यक्ति द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक किसी भी धार्मिक विश्वास का पालन करना ही पर्याप्त धार्मिक अधिकार समझा जाए।
- सामाजिक जीवन में साम्प्रदायिक रंग देने वाले व्यक्ति को कठोर दण्ड दिया जाए।
- चुनाव के समय धर्म विशेष से लाभ पर रोक।

साम्प्रदायिकता

धर्म में निष्ठा एवं धार्मिक व्यवस्था का अनुपालन सांप्रदायिकता नहीं है, वस्तुत: यह एक राजनीति अभिमुख अवधारणा है जो केवल धार्मिक समुदाय को स्वीकार करती है। यह धार्मिकता या धर्म की राजनीतिक इच्छा-पूर्ति में रूपान्तरित स्थिति है।

धर्म के मूलभूत नैतिक मूल्यों, मान्यताओं एवं विश्वासों को समसामयिक राजनीतिक सुविधाओं की आवश्यकताओं के अनुसार तोड़-मरोड़कर विकृत रूप से पेश करना ही साम्प्रदायिकता है। इसमें एक धार्मिक समुदाय का अन्य धार्मिक समुदाय से विद्वेष, प्रतिस्पर्धा और दुश्मनी पैदा की जाती है, ताकि वह अन्य समुदायों को अपने शत्रु के रूप में समझने लगे।

स्पष्ट है कि जहाँ पंथनिरपेक्षता राजनीति से धर्म को पृथक करने को इंगित करती है, वहीं साम्प्रदायिकता राजनीतिक हितपूर्ति के संदर्भ में धर्माधारित होकर आगे बढ़ती है। यह सामाजिक-सांस्कृतिक, सहअस्तित्व के मानक के रूप में स्थापित पंथनिरपेक्षता के स्वरूप का विरोध करती है।

क्र.सं.	धर्मतंत्र	धर्मनिरपेक्षता
1.	शासन धर्म विशेष के अनुसार अर्थात् राज्य का कोई न कोई राजकीय धर्म अवश्य होता है।	शासन धर्म विशेष के अनुसार नहीं। इसमें राज्य का कोई राजकीय धर्म नहीं होता। उदाहरणस्वरूप–भारतीय शासन में।
2.	इसमें राजनीति धर्मधारित होती है। इसमें धर्म व राजनीति में घनिष्ठ संबंध माना जाता है।	राजनीति का धर्म से पृथक्कीकरण होता है। राजनीति धर्मनिरपेक्ष होती है।
3.	धर्मसत्ता व राज्य सत्ता में अंतर नहीं।	राज्यसत्ता, धर्मसत्ता से पृथक, स्वतंत्र एवं स्वायत्त होती है।
4.	धर्मतंत्र में वैसे नागरिक जो उस धर्म विशेष के नहीं है, उन्हें द्वितीय श्रेणी का नागरिक माना जाता है।	सभी धर्मो के सदस्यों के साथ समान व्यवहार, समान महत्व और आदर दिया जाता है। जैसे–भारत।
5.	नैतिकता धर्माधारित	नैतिकता धर्म निरपेक्ष।
6.	धर्म के अनुसार पुरस्कार एवं दण्डविधान की व्यवस्था	दण्ड व पुरस्कार की अवधारणा संविधान निर्देशित
7.	धर्मतंत्र में 'हमलोग' और 'वे लोग' की अवधारणा निहित है।	धर्मनिरपेक्षता में 'सभी' की अवधारणा विद्यमान है।

आज देश के सम्मुख उठती साम्प्रदायिक चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में पंथनिरपेक्षता के इस भारतीय रूप के आदर्शो का अनुपालन सुनिश्चित करना हमारा भविष्य का लक्ष्य हो जाता है। 'Secularism' को मजबूत करके ही हम साम्प्रदायिकता से बच सकते हैं।

8 बहुसंस्कृतिवाद (Multi-Culturalism)

विश्व के अधिकांश देशों में भिन्न–भिन्न धर्म, प्रजाति एंव संस्कृतियों के लोग रहते हैं। यद्यपि अधिकांश देशों में इनको समान नागरिक व राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए हैं तथा लोकतांत्रिकरण के क्रम में धर्म, लिंग, जाति एवं रंगभेद आधारित मतभेद भी कम हुए हैं परंतु यहाँ विभिन्न संस्कृतियों के रक्षण व उनकी पहचान को सुरक्षित रखने का प्रयास नहीं हुआ है। परिणामस्वरूप संस्कृति आधारित भेदभाव सम्पूर्ण विश्व में बढ़ा है तथा विभिन्न संस्कृतियों की पहचान पर भी संकट उत्पन्न हुए हैं। इन्हीं समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट कराने हेतु बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा उभरी है। यह सांस्कृतिक विविधता के रक्षण हेतु संरक्षणकारी नीतियों की वकालत करता है।

क्या है : बहुसंस्कृतिवाद एक ऐसी अवधारणा है जो विभिन्न सांस्कृतिक पहचानों को सुरक्षित रखते हुए सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण एवं प्रोत्साहन करती है। स्पष्ट है कि इस अवधारणा में विभिन्न संस्कृतियों के सहअस्तित्व व संरक्षण के साथ साथ सहसंपन्नता का भाव विद्यमान है।

उद्देश्य : (i) अल्पसंख्यक सांस्कृतिक समुदायों के प्रति भेदभाव न्यूनतम किया जाए।

(ii) गैर–विभेदीकरण का आदर्श प्रोत्साहित किया जाए।

लाभ या वरदान क्यों :

1. अनेक संस्कृतियों की उपस्थिति हमारे जीवन एवं समाज को समृद्ध बनाती है। इससे सामाजिक गतिविधियों में जीवंतता बनी रहती है।
2. भिन्न–भिन्न संस्कृतियाँ हमें भिन्न–भिन्न जीवन पद्धतियाँ एवं सोचने का ढंग प्रदान करती हैं।
3. विभिन्न संस्कृतियों की उपस्थिति से हमारा दृष्टिकोण व्यापक बनता है, जागरूकता आती है तथा समस्याओं को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का दृष्टिकोण पैदा होता है। इससे व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में मदद मिलती है।

4. बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा को बढ़ावा देने पर अल्पसंख्यक संस्कृतियों में राज्य के प्रति विरोध का भाव समाप्त होता है और इससे उनमें आत्मसम्मान, आत्मगौरव का भाव उत्पन्न होता है।
5. भूमंडलीकरण के दौर में अधिक प्रासंगिक, लुप्तप्राय संस्कृतियों के संरक्षण में सहायक, आधुनिकता की एक पहचान, सभी संस्कृतियों को स्वतंत्रता, संस्कृतियों के मध्य संघर्ष एवं वैमनस्य की संभावनाएँ कम।

विशेषताएँ

1. बहुसंस्कृतिवाद सांस्कृतिक विविधता को एक पोषणकारी मूल्य मानता है। यह समाज में इसका संरक्षण एवं प्रोत्साहन चाहता है।
2. बहुसंस्कृतिवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्त्व देता है।
3. बहुसंस्कृतिवाद का यह मानना है कि प्रत्येक संस्कृति में विशिष्ट मूल्य होते हैं। ऐसी स्थिति में एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति के मूल्यों के आधार पर नहीं समझा जा सकता। प्रत्येक संस्कृति एक अतुलनीय इकाई है।
4. यह अल्पसंख्यक संस्कृति के लिए विशेष अधिकार एवं संरक्षण की वकालत करता है ताकि राष्ट्र राज्य की एकता को जातीय संघर्षों का खतरा न हो।

   विभिन्न संस्कृतियों के मध्य संबंध के तीन प्रारूप

   (i) Salad Bowl Theory: यह सिद्धान्त पृथक्कीकरण (Isolationism) पर जोर देता है। इसके अनुसार विभिन्न प्रजाति या परंपरागत सांस्कृतिक समुदायों में परिवर्तन या एकीकरण का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इनके व्यवहार, विश्वास एवं सांस्कृतिक पहचान को बने रहने देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, ''जो जैसा है वह वैसा रहे'' इस बात पर बल दिया जाता है। इस रूप में यह विविधताओं पर जोर देता है।

   (ii) Melting Pot Theory: यह आत्मसातीकरण (Assimilation) पर बल देता है। यह सभी सांस्कृतिक समुदायों के लोगों को एक समान शिक्षा देने तथा उनके विश्वासों एवं क्रियापद्धति में एकरूपता लाने का प्रयास करता है। यह सामान्य समेकित संस्कृति की बात करता है। इस रूप में यह आधुनिकीकरण का समर्थक है। उदाहरण- अमेरिकी संस्कृति में यह दिखाई देता है।

   (iii) Mosaic Theory: यह एकीकरण पर बल देता है। इसके अनुसार सामाजीकरण इस प्रकार होना चाहिए कि विभिन्न संस्कृति की पहचान सुरक्षित रहे। परन्तु इस क्रम में उसमें परस्पर जुड़ाव एवं एकीकरण भी हो। दूसरे शब्दों में, इसमें विभिन्न संस्कृति की पहचान बनाये रखते हुए परस्पर जोड़ने का प्रयास किया जाता है। जैसे- भारत। बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा में यह पक्ष अधिक प्रबलता के साथ उभरकर सामने आ रहा है।

बहुसंस्कृतिवाद यह मानता है कि प्रत्येक संस्कृति के विशिष्ट मूल्य होते हैं और व्यक्ति का जीवन उसी संस्कृति के मूल्यों से संचालित एवं प्रभावित होता है। इसलिए बहुसंस्कृतिवाद में विविध संस्कृतियों की पहचान को बनाए रखने और सार्वजनिक क्षेत्र में उनके साथ समान व्यवहार की मांग की जाती है।

आलोचना/अभिशाप क्यों

1. आलोचकों का यह कहना है कि बहुसंस्कृतिवाद से राष्ट्र राज्य कमजोर होगा क्योंकि यहाँ साझा संस्कृति की समस्त संभावनाओं को नकार दिया जाता है। यह राष्ट्रीय निर्माण योजना के लिए खतरा है। चूंकि यह अल्पसंख्यक सांस्कृतिक समुदायों के लिये विशेष अधिकारों की व्यवस्था की मांग करता है, इस रूप में यह राष्ट्र के विघटन को बढ़ावा दे सकता है। इसीलिए राष्ट्रवादी इसका विरोध करते हैं। राष्ट्रवादियों के अनुसार बहुसंस्कृतिवाद के सभी तर्क राष्ट्र-विरोधी भाव से किसी-न-किसी रूप से युक्त हैं।
2. चूँकि बहुसंस्कृतिवाद में विशिष्ट समूहों के लिए कुछ विशेष अधिकार एवं संरक्षण की बात होती है, इसीलिए इस अवधारणा के आधार पर राष्ट्रीय एकता की स्थापना नहीं की जा सकती।

9 सांप्रदायिकता (Sectarianism)

सांप्रदायिकता का वास्तविक आशय अपने धर्म के मूलभूत मूल्यों के अनुसार आचरण करना और धार्मिक गतिविधियों में संलग्न होना नहीं है। वास्तविक आशय धर्म के मूलभूत नैतिक मूल्यों एवं सिद्धांतों को समसामयिक राजनीतिक सुविधाओं के अनुसार तोड़-मरोड़ कर विकृत रूप से प्रस्तुत करना है। सांप्रदायिकता बहुजातीय, बहुधार्मिक, बहुभाषीय समुदायों की एकता के रूप में राष्ट्रवाद की अवधारणा का विरोध करती है। यह सामाजिक सांस्कृतिक सह-अस्तित्त्व के मानक के रूप में स्थापित पंथनिरपेक्षता के स्वरूप का विरोध करती है।

वस्तुत: सांप्रदायिकता एक ऐसा समाज विरोधी दृष्टिकोण है जिसके अंतर्गत उन समस्त भावनाओं एवं क्रियाकलापों का समन्वय होता है जिनमें किसी विशिष्ट धर्म या भाषा के आधार पर किसी समूह विशेष के निहित स्वार्थ पर बल दिया जाता है एवं उन हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर रखते हुए उस समूह में पृथकता की भावना उत्पन्न की जाती है।

1. सांप्रदायिकता विभिन्न वर्गों के बीच परस्पर द्वेष को बढ़ावा देती है, परिणामस्वरूप आपस में द्वेष या वैमनस्य उत्पन्न होना स्वभाविक है। परंतु यही द्वेष कभी-कभी भयावह रूप धारण कर समाज में आंतक एवं दहशत का माहौल उत्पन्न करता है जिससे सामाजिक समरसता भंग होती है।
2. सांप्रदायिक दंगों की आग में झुलस कर समाज की अर्थव्यवस्था बुरी तरह आहत हो जाती है जिसका खामियाजा लंबी समयावधि तक पूरे समाज को भुगतना पड़ता है।
3. सांप्रदायिकता राजनीतिक व्यवस्था में अस्थिरता की परिस्थिति पैदा कर देती है जिसके नकारात्मक परिणाम काफी दूरगामी होते हैं।
4. भारत की बहुलवादी व्यवस्था एवं राष्ट्रीय एकता तथा अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने में सांप्रदायिकता सदैव व्यवधान उत्पन्न करती रही है।

- ''धर्म की क्षति जिस अनुपात में होती हैं, उसी अनुपात में आडम्बर की वृद्धि होती है।'' ***-प्रेमचंद***
- ''बिना धर्म के विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञान से रहित धर्म अंधा है।'' ***-अल्बर्ट आईस्टीन***
- *"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।*
  परोपकार: पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।" ***-महर्षि वेदव्यास***

महर्षि वेदव्यास ने अठारह पुराणों में दो विशिष्ट बातें कही हैं। पहली- परोपकार करना पुण्य होता है और दूसरी- दूसरों को दु:ख देना पाप होता है।

- *''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,*
  अभ्युत्थानम्धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।'' ***-महाभारत***
- *''धर्म अफीम के समान है।''* ***- मार्क्स***

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

10 युद्ध (War)

युद्ध की ज्वाला जगी है।
था सकल संसार बैठा
बुद्धि में बारूद भरकर,-
क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मद की,
प्रेम सुमनावलि निदर कर;
एक चिन्गारी उठी, लो, आग दुनिया में लगी है।
युद्ध की ज्वाला जगी है।
अब जलाना और जलना,
रह गया है काम केवल,
राख जल, थल में, गगन में
युद्ध का परिणाम केवल।
आज युग-युग सभ्यता से काल करता बन्दगी है।

-हरिवंश राय बच्चन

- अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए आज धार्मिक क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करने वाले अग्रणी लोग सामान्य जनजीवन में घृणा का इतना विष घोल रहे हैं कि धर्म के नाम से ही अब लोग घृणा करने लगे हैं। आडम्बर, अंधविश्वास, अतार्किक एवं अवैज्ञानिक बातों को फैलाकर लोगों की धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है और इस क्रम में उनका शोषण भी हो रहा है। यही कारण है कि आज का बुद्धिप्रधान, तर्कप्रधान, वैज्ञानिक मनोवृत्ति वाला मनुष्य धार्मिक क्षेत्र में धर्म प्रधानों के क्रियाकलापों को देखकर भय और शंका से युक्त होने लगा है-

11 लोकतंत्र (Democracy)

- जिस प्रकार मैं गुलाम नहीं बनना चाहता, उसी प्रकार मैं किसी गुलाम का मालिक भी नहीं बनना चाहता। यह सोच लोकतंत्र के सिद्धांत को दर्शाती है।
- लोकतंत्र या प्रजातंत्र अथवा जनतंत्र आज के युग की शासन प्रणालियों की सर्वाधिक लोकप्रिय पद्धति ही नहीं बल्कि जीवन शैली बन चुका है। कारण स्पष्ट है कि सदियों पुरानी मानव सभ्यता ने अनेक प्रकार के प्रयोग जनकल्याण हेतु किए तथा वास्तविक परिणाम यह रहा कि लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित शासन व्यवस्था सर्वोत्कृष्ट है। यद्यपि मानव सभ्यता के आरंभिक चरणों में कबीलायी संस्कृति से लेकर मध्ययुगीन राजतंत्र तक की कई प्रकार की शासन प्रणालियाँ अस्तित्व में आई और आजमाई गई। अट्ठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदी में 'अहस्तक्षेपवादी राज्य' की अवधारणा भी प्रचलित रही है, जिसके अंतर्गत मूल चिंतन यह था कि "व्यक्ति को अकेला छोड़ दो। राज्य एक आवश्यक बुराई है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं कल्याण में बाधा उत्पन्न करता है।"
- कालांतर में बीसवीं सदी आते-आते लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा विश्वव्यापी हो गई तथा इस क्रम में लोकतंत्र को श्रेष्ठ माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया गया। लोकतंत्र का मूल मंतव्य राज्य तथा समाज में जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना है। राजतंत्र, वर्गतंत्र या कुलीनतंत्र व्यक्ति तथा समाज का भला नहीं कर सकता। इसलिए जनता के स्वयं के मत, प्रयास तथा इच्छा से संचालित शासन प्रणाली अर्थात् लोकतंत्र एक सशक्त विधि सिद्ध होती है।

- लोकतंत्र की निम्नांकित विशेषताएँ उल्लेखनीय मानी जाती हैं-
    - जनसंप्रभुता में आस्था
    - स्वच्छ, नैतिक, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव
    - समाज के प्रति प्रतिबद्धता
    - सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समानता
    - विवेक में विश्वास
    - नागरिकता
    - विधि का शासन तथा संविधानवाद
    - राष्ट्र के प्रति समर्पण
    - व्यक्ति का सम्मान
    - बहुमत का शासन
    - शक्ति पृथक्करण (शासन के अंगों के मध्य)
    - विकेंद्रीकरण
- **संसदीय लोकतंत्र (Parliamentary Democracy):** भारत में ग्रेट ब्रिटेन की भाँति संसदीय प्रणाली के रूप में शासन व्यवस्था प्रवर्तित है। संसदीय लोकतंत्र की शासन प्रणाली में दोहरी कार्यपालिका, विधायिका में से कार्यपालिका का चयन तथा कार्यपालिका का विधायिका के प्रति उत्तरदायी होना इत्यादि मुख्य लक्षण माने जाते हैं। भारत का संविधान, देश में संघीय तथा प्रांतीय दोनों स्तरों पर संसदीय शासन प्रणाली का प्रावधान करता है। संघीय स्तर पर राष्ट्रपति तथा राज्यों में राज्यपाल, नाममात्र की कार्यपालिका हैं तथा प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री तथा इनकी मंत्रिपरिषद्, वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करते हैं। विधायिका में बहुमत खो देने पर वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना होता है।

12 सभ्यता और संस्कृति (Civilization and Culture)

- मानव-व्यक्तित्त्व भौतिक, जैविक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का समन्वित रूप है, इन शक्तियों का परिष्कार एवं सामन्जस्य ही संस्कृति का ध्येय है।
- भारतीय संस्कृति अपनी अनन्य विशेषताओं के कारण विश्व में अत्यन्त सम्मानित स्थान रखती है। आध्यात्मिकता, समन्वयवादिता, सहिष्णुता, सर्वांगीणता, अविच्छिन्नता, त्याग-तपोमयता एवं विश्वशांति की भावना आदि कुछ ऐसी सनातन मान्यताएँ है जिनके आधार पर भारतीय संस्कृति सर्वप्रथम सार्वभौम संस्कृति कही जाती है।
- भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में भोगने का विरोध नहीं है, अपितु भोगने की पद्धति का विरोध है। असीमित भोग विनाशकारी है इसीलिए ऋषियों ने 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा:' अर्थात् 'त्यागपूर्वक भोग करो' की बात की। इस प्रकार यहाँ भोगों को सीमित किया गया है, भोग करो परंतु उसी में डूबे रहो यह ठीक नहीं; यही त्यागपूर्ण भोग है।
- उन सभी वस्तुओं के समूह को जिनमें ज्ञान, धार्मिक विश्वास, कला, नैतिक नियम, परम्पराएँ तथा वे सभी अन्य योग्यताएँ सम्मिलित होती हैं तथा जिन्हें कोई मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते सीखता है, संस्कृति कहते हैं।

  - (ई. बी. टेलर)
- किसी समाज और राष्ट्र की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ ही संस्कृति है। जिससे समाज और राष्ट्र परिचित होता है।

  - (मैथ्यू आर्नोल्ड)
- यदि एक संस्कृति की तुलना हम जीवित प्राणी से करें तो हम देखेंगे कि संस्कृति का जीवन भी बहुत कुछ उस बात पर निर्भर करता है कि संस्कृति नित्य परिवर्तनशील होती हुई भी किस प्रकार अपने सातत्य को, अपनी निरन्तरता को बनाये रख सकती है। अपने सातत्य को बनाने में डार्विन का सर्वाधिक योग्य बने रहने (Survival of the Fittest) का सिद्धांत भी काम करता है। जिस प्रकार प्राणियों की अनेक उपजातियाँ इस लिये समाप्त हो गई क्योंकि वे बदलते हुए

वातावरण में अपने को ढाल नहीं सकी या संघर्षमय जीवन के लिए पर्याप्त शक्ति नहीं जुटा पाई, इसी प्रकार अनेक संस्कृतियाँ भी इसलिये समाप्त हो गई कि वे या तो बदलते हुए वातावरण के अनुसार ढल नहीं पाई या इतनी शक्ति नहीं जुटा पाई कि अन्य आक्रमणकारी शक्तियों का समुचित ढंग से सामना कर सकें।

- संस्कृति के दो रूप होते हैं - एक बाह्य और दूसरा आंतरिक। उसका रहन-सहन, उसकी सुख-सामग्री, उसकी भौतिक उन्नति उसका बाह्य रूप है। उसका चिंतन, उसका ज्ञान और दर्शन, उसका आंतरिक रूप है। संस्कृति की निरन्तरता की प्राणशक्ति, उसकी संजीवनी, उसका यही आन्तरिक रूप होती है। बाह्य रूप में निरन्तर परिवर्तन के साथ उसकी पहचान को बनाने वाला भी यह आन्तरिक रूप होता है।

- *इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,*
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।

- *एक चिनगारी कहीं से ढूँढ लाओ दोस्तों,*
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

- इकबाल की प्रसिद्ध पंक्तियाँ:-

यूनान मिस्र रूमाँ सब मिट गये जहाँ से
अब तक मगर है बाकी नामोंनिशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन रश्के जहाँ हमारा।

यह सच है कि संसार की अनेक विशाल, समृद्ध और शक्तिशाली संस्कृतियाँ-यूनान, मिस्र और रोम की संस्कृतियाँ काल-कवलित हो गई। चीन की संस्कृति भी अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती हुई आधुनिक साम्यवाद द्वारा ग्रस ली गई किन्तु भारतीय संस्कृति अनेक संकटों से जूझती हुई अभी तक जीवित है, आखिर वह कौन सी बात है कि हमारी हस्ती नहीं मिटती?

- *हम लाए हैं तूफ़ान से कश्ती निकाल के*
इस देश को रखना मेरे बच्चों सम्भाल के
तुम ही भविष्य हो मेरे भारत विशाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चों सम्भाल के

- *नजर को बदलिये, नजारे बदल जायेंगे,*
सोच को बदलिये, सितारे बदल जायेंगे।
किश्तियाँ बदलने की जरूरत नहीं,
दिशा को बदलिये, किनारे बदल जायेंगे।

- *साईं इतना दीजिए जामें कुटुम्ब समाय।*
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाये।

- हमारे पिछड़ने की शुरुआत ही तभी से हुई जब से हम यह मान बैठे कि सारा ज्ञान हमारे ही पास है, हम जगत के गुरु हैं, हमें औरों से कुछ नहीं सीखना। जिन्हें सीखना हो, हम से सीखें। इस तरह हम कूपमण्डूक हो गए। वस्तुतः हमें अपनी सभ्यता व संस्कृति के सकारात्मक पक्षों का रक्षण करना चाहिए परन्तु उस पर अहंकार ठीक नहीं है साथ ही हमें खुले मन से उन्नत विचारों को आने देना चाहिए। हमारे ग्रंथों में भी कहा गया है कि विभिन्न कल्याणकारी विचार चारों दिशाओं से आयें।

- **सामासिक संस्कृति (Composite Culture):** वह स्थिति जिसमें देश की प्रमुख संस्कृति अन्य संस्कृतियों के संपर्क में आने पर उनकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को आत्मसात् कर लेती है। इससे कोई संस्कृति नष्ट नहीं होती बल्कि सब संस्कृतियों के स्वैच्छिक संयोग से एक नई, समन्वित संस्कृति का निर्माण होता है।
- किसी भी देश की समृद्धि उसके धन की प्रचुरता, उसके किलों की मजबूती या उसकी भव्य इमारतों पर निर्भर नहीं करती। यह तो उस देश की शिक्षा, संस्कृति, चरित्र व मानसिक खुलेपन के पैमाने पर मापी जा सकती है।

–मार्टिन लूथर किंग

संस्कृति क्या है?

शाब्दिक रूप से **'संस्कृति'** शब्द की उत्पत्ति 'संस्कृत' से हुई है। संस्कृत का अर्थ है– परिष्कृत। अत: 'संस्कृति' का सम्बन्ध ऐसे तत्त्वों से है जो व्यक्ति का परिष्कार कर सकें। एक अन्य व्याख्या के अनुसार 'संस्कृति' शब्द संस्कार से बना है। संस्कार का अर्थ है– **'शुद्धि की प्रक्रिया'**। यहाँ शुद्धि का अर्थ सामाजिकता से है। आशय है कि व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाने में जितने भी तत्त्वों का योगदान होता है, उन सभी तत्त्वों की व्यवस्था का नाम ही संस्कृति है। यह मानव के विचारों एवं व्यवहारों के प्रतिमान को इंगित करती है।

नैतिक दृष्टिकोणों से संस्कृति सुन्दर वस्तुओं के आनन्द, मानवीय दृष्टि से मूल्यवान ज्ञान और समूहों द्वारा मान्य उचित सिद्धान्तों से संबंधित है।

टाइलर के अनुसार – "संस्कृति समग्र का एक संकुल है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिक शिक्षा, कानून, रीति-रिवाज तथा अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश रहता है और जिसे व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।"

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि संस्कृति मनुष्यों के समग्र जीवन का एक तरीका है, यह मनुष्य के सामाजिक व्यवहारों को निश्चित करती है और जीवन के आदर्श और सिद्धान्तों को प्रकाश देती है। संस्कृति के द्वारा निर्धारित संस्कारों के माध्यम से ही समाजीकरण एवं मानवीकरण होता है। संस्कृति की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

- संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है।
- संस्कृति में हस्तांतरित होने का गुण है।
- संस्कृति एक संग्रहित ज्ञान है जिसमें संशोधनों एवं संकलनों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जाता है।
- संस्कृति गतिशील है।
- संस्कृति समूह का आदर्श होती है।
- संस्कृति में सामाजिकता, अनुकूलता एवं आवश्यकता पूर्ति का गुण है।
- प्रत्येक समाज की संस्कृति अलग-अलग होती है।

सभ्यता का अर्थ

मैकाइबर एवं पेज के अनुसार – "सभ्यता से हमारा अर्थ अपने जीवन की दशाओं को नियंत्रित करने के लिए मानव द्वारा नियोजित सम्पूर्ण संगठन एवं यांत्रिकता से है।" सभ्यता का सम्बन्ध ऐसे सभी पदार्थों से है जिनको मूर्त रूप से देखा जा सके, जो पदार्थ हमें अपनी विरासत में मिलते हैं तथा जिसे हम अपनी आवश्यकता के अनुसार निर्माण करते हैं।

सभ्यता की विशेषताएँ

- सभ्यता प्रमुख रूप से संस्कृति का भौतिक पक्ष है।
- सभ्यता के अन्तर्गत आने वाली वस्तुएँ हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन हैं।
- पदार्थ निर्माण की तकनीक भी सभ्यता में सम्मिलित है।
- सभ्यता एक परिवर्तनशील अवधारणा है।
- सभ्यता के अनुपयोगी अंग को प्राय: व्यक्ति त्याग देता है।

सभ्यता और संस्कृति में अन्तर

- संस्कृति बौद्धिक एवं आत्मिक उन्नति की सूचक है जबकि सभ्यता भौतिक विकास एवं उपलब्धियों को इंगित करती है।
- सभ्यता की माप सम्भव है परन्तु संस्कृति की नहीं। सभ्यता का विकास होता है। सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता के क्षेत्र से है जबकि संस्कृति का मूल्यों के क्षेत्र से है। हम विभिन्न भौतिक वस्तुओं की उपयोगिता का माप करके यह बता सकते हैं कि कौन अधिक उपयोगी है या कौन कम उपयोगी है। दूसरी ओर, संस्कृति का कोई मापक नहीं है।
- सभ्यता को बिना किसी परिवर्तन के प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु संस्कृति को आत्मसात् करना होता है।
- संस्कृति साध्य है जबकि सभ्यता साधन है।

इन अन्तरों के होते हुए भी सभ्यता और संस्कृति में सम्बन्ध है। इन सम्बन्धों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है–

- सभ्यता संस्कृति की वाहिका है।
- सभ्यता संस्कृति का पर्यावरण है।
- सभ्यता सांस्कृतिक क्रियाओं को शक्ति प्रदान करती है।
- संस्कृति सभ्यता की दिशा को प्रभावित करती है।

वस्तुतः सभ्यता और संस्कृति दोनों मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के कार्य या परिणाम हैं। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है तब सभ्यता का जन्म होता है और जब मूल्य-चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है तब संस्कृति का उदय होता है।

लोकप्रिय दृष्टि से संस्कृति के भौतिक पक्ष जैसे वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों को सभ्यता कहा जाता है और सामाजिक समूह की अभौतिक उच्च उपलब्धियों को जिनमें कला, संगीत, साहित्य, दर्शन, धर्म और विज्ञान सम्मिलित होते हैं, को संस्कृति कहा जाता है। वास्तव में सभ्यता एवं संस्कृति परस्पर अंतः संबंधित है।

दर्शन का संस्कृति पर प्रभाव

प्रत्येक राष्ट्रीय समाज की अपनी एक संस्कृति होती है। यह संस्कृति उसके साहित्य, कला, संगीत, नाटक, रीति-रिवाज आदि में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। समाज या राष्ट्र की संस्कृति दर्शन से पूर्णतया प्रभावित होती है। यह प्रभाव निम्न रूपों में देखा जा सकता है–

1. दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुरूप ही समाज या राष्ट्र की संस्कृति का निर्माण होता है। विभिन्न संस्कृतियों यथा– भौतिकतावाद, आध्यात्मवाद, बुद्धिवाद, रहस्यवाद, अद्वैतवाद आदि के अन्तर का कारण एवं आधार विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोण ही हैं। उदाहरणस्वरूप – भारतीय संस्कृति मूलतः आध्यात्मिक है क्योंकि भारतीय दर्शन मूलतः आध्यात्मिक (अपवाद – चार्वाक) है।
2. किसी भी संस्कृति की बुनियादी मान्यताओं का सम्बन्ध दर्शनशास्त्र की विषयवस्तु से होता है। दर्शन संस्कृति की इन मूल मान्यताओं को तर्कबुद्धि की कसौटी पर कसता है। इस प्रकार दर्शन संस्कृति के आधार को तर्कसंगत एवं सुदृढ़ बनाता है।
3. दर्शन संस्कृति के मार्गदर्शक एवं संरक्षक का काम करता है। दर्शन ही संस्कृति के स्वरूप एवं दिशा का निर्धारण करता है। जब संस्कृति पर आघात् होता है, तो दर्शन ही उसके मूल्यात्मक, रचनात्मक, संवेगात्मक तथा उपयोगितापरक पक्षों को उभारकर उसकी रक्षा करता है और उसे नये प्रगतिशील मूल्यों से युक्त करता है।
4. दर्शन संस्कृति का प्राण है। दार्शनिक साहित्य ही किसी देश की संस्कृति के वास्तविक प्रतीक होते हैं।
5. दर्शन का सम्बन्ध तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, तत्त्व विज्ञान आदि से होता है। यहाँ सर्वांगीण एवं समीक्षात्मक दृष्टिकोण को महत्त्व दिया जाता है। परिणामस्वरूप संस्कृति में भी समन्वयात्मक दृष्टिकोण एवं गहनतम रहस्यों को व्यापकता में समझने की अन्तर्दृष्टि का विकास होता है।

वास्तव में दर्शन और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं।

- दर्शन विचारों, आदर्शों व चिन्तन प्रक्रियाओं का संगठित रूप हैं। संस्कृति इसी प्रक्रिया का इतिहास है।
- संस्कृति एक स्थिर प्रतिमान है। दर्शन उसकी विवेचना करके उसे परिपक्व एवं सम्पन्न बनाता है। दर्शन सांस्कृतिक परिवर्तन का बौद्धिक पहलु है।

12 साहित्य, समाज और दर्पण

- *दर्पण कभी झूठ नहीं बोलता।*
  चेहरे की झुर्रियों का सच कहता है दर्पण।
  सिंगार में छिपी उम्र की कथा कहता है दर्पण।
  आँखों के डोरों में झूलते सपने दिखाता है दर्पण।
  गम और खुशी में जो छलकते हैं आँसू-
  फर्क उनका बताता है दर्पण।
  कुछ भी न छिपता दर्पण के सामने,
  सारी हकीकत यह आसानी से खोलता।
  दर्पण कभी झूठ नहीं बोलता।

- 'माधवी परिमल'

13 समाजिक परिवर्तन : परंपरा और आधुनिकता (Social Change : Tradition and Modernity)

स्थान, समाज और संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संरचना के भीतर होने वाले परिवर्तन की प्रक्रियाओं के पुँज को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

परम्परा और आधुनिकता दोनों का संबंध सामाजिक परिवर्तन एवं गतिशीलता से है। परम्परा अतीत की सामाजिक विशेषताओं को भावी पीढ़ी को सौंप देती है। परिणामस्वरूप अगली पीढ़ी में वही व्यवहार एवं नियम प्रचलित हो जाते हैं। इस प्रकार व्यापक अर्थ में सामाजिक विरासत एवं परम्परा दोनों एक ही हैं।

परम्परा शब्द का अंग्रेजी रूपान्तरण 'ट्रेडिशन' (Tradition) है। 'ट्रेडिशन' शब्द की उत्पत्ति 'ट्राडेरे' (Tradere) से हुई है। जिसका अर्थ है- एक-दूसरे को देना या सौंपना या हस्तांतरित करना। सामान्यत: परम्परा से आशय किसी समाज या समूह में विचार, विश्वास व व्यवहार की रीतियों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरण है। **जिन्स बर्ग** के शब्दों में *"परंपरा से तात्पर्य उन सभी विचारों आदतों तथा रिवाजों के योग से है जो एक समाज में पायी जाती हैं तथा जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती हैं।"* **रॉस** ने भी परंपरा को परिभाषित करते हुए कहा है कि- *"परंपरा का अर्थ है चिंतनों तथा विश्वासों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण।"* इस प्रकार स्पष्ट है कि परंपरा वह अभौतिक सामाजिक विरासत (जैसे-रीति-रिवाज, प्रथा, मूल्य, धर्म, नैतिक मान्यताएँ, रूढ़ियाँ, स्वीकृतियाँ, निषेध आदि) है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।

भारतीय समाज के निर्माण में परम्परा की भूमिका

परम्परा समाज की धरोहर होती है, और इसी से हमारी सभ्यता और संस्कृति निर्मित होती है। परम्पराओं में अतीत के अनुभव सन्निहित होते हैं। परम्परायें सामाजिक मूल्यों का, वैयक्तिक एवं सामाजिक संरचना का निर्धारण करती हैं।

'आधुनिक' का अंग्रेजी रूपान्तरण 'मॉडर्न' (Modern) है। 'मॉडर्न' शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के 'मोडो' (Modo) से हुई है जिसका अर्थ है– प्रचलन। दूसरे शब्दों में वर्तमान में जो कुछ प्रचलन में है, वही आधुनिकता है। समाज वैज्ञानिकों ने इसी के आधार पर आधुनिकतावाद, आधुनिकीकरण के सम्प्रत्यय को विकसित किया है।

आधुनिकता में वैज्ञानिकता का तत्व प्रमुख है। यहाँ वैज्ञानिकता का आशय तार्किकता एवं समीक्षात्मक दृष्टिकोण से है। मानव समाज में गतिशीलता इसी के आधार पर उत्पन्न हो सकती है। इसके अभाव में समाज रूढ़िवादिता और अंध विश्वास से ग्रसित हो जाएगा।

यह सही है कि भारतीय जीवन में सामाजिक परिवर्तन की दिशा प्रदर्शित करने में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का योगदान रहा है। परन्तु केवल पश्चिम की नकल को ही आधुनिकीकरण नहीं कहा जा सकता है। पश्चिमीकरण आधुनिकीकरण का एक कारक हो सकता है पर दोनों पर्यायवाची नहीं हैं।

भारतीय समाज में पाश्चात्य प्रभाव से घटित आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषताएँ :-

- आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिकीकरण, मशीनीकरण तथा विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति हुई है। प्रति व्यक्ति आय एवं लोगों के जीवन–स्तर में सुधार हुआ है। आर्थिक क्षेत्र में विशेषीकरण, श्रम–विभाजन, प्रतिस्पर्धा के नये तरीके, कार्यों के विभेदीकरण के कारण प्रगति के नये आयाम प्रस्तुत हुए हैं।
- सांस्कृतिक क्षेत्र में बौद्धिक विकास, प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण, स्वेच्छापूर्वक नये मूल्यों का अवग्रहण, अन्धविश्वासों का परित्याग एवं व्यापक दृष्टिकोण का समावेश हुआ है।
- राजनैतिक क्षेत्र में राज्य के द्वारा कल्याणकारी कार्य, शक्ति के विकेन्द्रीकरण और राजनीतिक सहचारिता पर बल दिया गया है।
- धार्मिक क्षेत्र में धर्म–निरपेक्षता और सहिष्णुता की मांग बढ़ी है।

आधुनिकता के गत्यात्मक तत्व (Dynamics of Modernisation)

1. वैज्ञानिक बुद्धिवाद
2. धर्म–निरपेक्षीकरण
3. जनतंत्रीकरण
4. बुद्धिजीवी माँग तथा सर्जना, लोकतंत्रीकरण।

आधुनिकीकरण के अंतर्गत धार्मिक अंधविश्वास से समीक्षात्मक और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण की दिशा में परिवर्तन शामिल है।

- आधुनिकता प्रौद्योगिकी (Technology) से युक्त है।
- वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण आधुनिकता के भाई–बंधु हैं।
- मनुष्य के विवेक का उत्तरोत्तर विकास एवं प्रयोग आधुनिकता के मौलिक लक्षण हैं।

14 कबीर
(Kabir)

- *जो तोको काँटा बुवै ताहि बोव तू फूल।*
  तोहि फूल को फूल है वाको है तिरसुल॥

कबीरदास जी कहते हैं कि जो तुम्हारे लिए परेशानी या मुसीबत खड़ी करे, तुम उसके लिए भी अच्छा ही कार्य करो, प्रतिशोधवश गलत आचरण न करो। इससे तुम्हारे स्वाभाव एवं मन, बुद्धि में अच्छे भाव आयेगें जो अंततः तुम्हारे लिए लाभदायक होगें जबकि जिसने दुश्मनी से प्रेरित होकर तुम्हारे लिए कठिनाई पैदा की है, नफरत के बीज तुम्हारे लिए बोये हैं, उसका फल उसको अवश्य मिलेगा।

साक्ष्य : पाकिस्तान में बढ़ती हुई आतंकवादी घटनाएं।

- *"ऐसी बानि बोलिये, मन का आपा खोय।*
  औरन को शीतल करै, आपहुँ शीतल होय।"

  अर्थः- मन के अहंकार को मिटाकर, ऐसे मीठे और विनम्र वचन बोलें, जिससे दूसरे लोग सुखी एवं आनन्दित हों और स्वयं को भी सुखकर लगे।

- *चाह मिटी, चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह,*
  जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

  अर्थः इस दोहे में कबीर कहते हैं कि इस जीवन में जिस किसी भी व्यक्ति के मन में लोभ नहीं, मोह माया नहीं, जिसको कुछ भी खोने का डर नहीं, जिसका मन जीवन के भोग विलास से बेपरवाह हो चुका है वही सही मायने में इस विश्व का राजा-महाराजा है।

- *बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय,*
  जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय।

  अर्थः इस दोहे में कबीर ने एक बहुत ही अच्छी बात लिखी है, वे कहते हैं कि जब मैं पूरे संसार में बुराई ढूँढ़ने के लिए निकला तो मुझे कोई भी, किसी भी प्रकार का बुरा और बुराई नहीं मिला। परन्तु जब मैंने स्वयं को देखा तो मुझसे बुरा कोई नहीं मिला। कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति अन्य लोगों में गलतियाँ ढूँढ़ते हैं, वही सबसे ज्यादा बुराई से भरे हुए होते हैं।

- *माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोय*
  एक दिन ऐसा आयेगा मैं रौंदूंगी तोय।

  अर्थः मिट्टी कुम्हार से कहती है, तू क्या मुझे गुन्देगा मुझे आकार देगा, एक ऐसा दिन आयेगा जब में तुम्हें रौंदूंगी। यह बात बहुत ही जानने और समझने की बात है कि इस जीवन में चाहे जितना बड़ा मनुष्य हो राजा हो, या गरीब हो आखिर में हर किसी व्यक्ति को मिटटी में मिल ही जाना है।

- *धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय,*
  माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।

  अर्थः कबीर का कहना है कि हर काम इस संसार में धीरे-धीरे पूरा होता है। माली के सौ बार सींचने पर भी फल तभी आते हैं जब उस फल की ऋतु आती है। जीवन में हर कोई चीज अपने समय पर ही पूरी होती है, ना कोई समय से पहले ना कोई समय के बाद।

- *दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करै न कोय।*
  जो सुख में सुमिरन करे दुःख काहे को होय

अर्थ: कबीर कहते हैं कि सभी लोग दुःख में भगवान को याद करते हैं, परन्तु सुख के समय कोई भी भगवान को याद नहीं करता। अगर सुख में प्रभु को याद किया जाए तो दुःख हो ही क्यों ?

- *साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय,*
  सार-सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय।

अर्थ: इस दोहे में कबीर इस संसार के सभी बुरी चीजों को हटाने और अच्छी चीजों को समेट सकने वाले विद्वान व्यक्तियों के विषय में बता रहे हैं। दुनिया में ऐसे साधुओं और विद्वानों की आवश्यकता है जैसे अनाज साफ़ करने वाला सूप होता है, जो सार्थक को बचा लेंगे और निरर्थक को उड़ा देंगे।

- *माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर,*
  कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।

अर्थ: कई युगों तक या वर्षों तक हाथ में मोतियों की माला घुमाने और जपने से किसी भी व्यक्ति के मन में सकारात्मक विचार उत्पन्न नहीं होते, उसका मन शांत नहीं होता। ऐसे व्यक्तियों को कबीरदास जी कहते हैं कि माला जपना छोड़ो और अपने मन को अच्छे विचारों की ओर मोड़ो या फेरो।

- *बोली एक अनमोल है, जो कोई बोलै जानि,*
  हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आनि।

अर्थ: कबीर कहते हैं कि जो कोई भी व्यक्ति सही बोली बोलना जानता है जो अपने मुख से बोलने या वाणी का मूल्य समझता है, वह व्यक्ति अपने हृदय के तराजू में हर एक शब्द को तोल कर ही अपने मुख से निकालते हैं। बिना सोचे समझे बोलने वाले व्यक्ति मूर्ख होते हैं।

- *गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागु पाए,*
  बलिहारी गुरु आपनो, गोविन्द दियो मिलाय।

अर्थ: कबीर इस दोहे के द्वारा यह समझाने कि कोशिश कर रहे हैं कि गुरु का सही महत्त्व क्या है जीवन में। वह इस बात को भी बताना चाहते हैं कि ईश्वर और गुरु में आपको पहले स्थान पर किसे रखना चाहिए और चुनना चाहिए। इस बात को समझाते हुए कबीर जी कहते हैं कि गुरु ही वह है जिसने आपको ईश्वर के महत्त्व को समझाया है और ईश्वर से मिलाया है, इसलिए गुरु का दर्जा इस संसार में हमेशा ऊपर होता है।

- *माखी गुड़ में गडी रहे, पंख रहे लिपटाये,*
  हाथ मले और सिर धुनें, लालच बुरी बलाये।

अर्थ: इस दोहे में कबीर ने लालच कितनी बुरी बाला है उसके विषय में समझाया है। वे कहते हैं मक्खी गुड़ खाने के लालच में झट से जा कर गुड़ में बैठ जाती है परन्तु उसे लालची मन के कारण यह भी याद नहीं रहता कि गुड़ में वह चिपक भी सकती है और बैठते ही वह चिपक जाती है और मर जाती है। उसी प्रकार लालच मनुष्य को भी किस कदर बर्बाद कर सकता है वह सोचना भी मुश्किल है।

- *कबीर संगत साधु की, नित प्रति कीजै जाय,*
  दुरमति दूर बहावासी, देशी सुमति बताय।

अर्थ: कबीर इस दोहे में सकारात्मक विचारों के पास रहने से किस प्रकार जीवन में सकारात्मक सोच और विचार हम ला सकते हैं उसको समझा है। प्रतिदिन जाकर संतों विद्वानों की संगत करो, इससे तुम्हारी दुर्बुद्धि और नकारात्मक सोच दूर हो जाएगी और संतों से अच्छे विचार भी सीखने-जानने को मिलेगा।

- *निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय,*
  बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।

अर्थ: इस दोहे में कबीर ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही हैं उन लोगों के लिए जो दिन-रात आपकी निंदा करते हैं और आपकी बुराइयाँ बताते हैं। कबीर जी कहते हैं ऐसे लोगों को हमें अपने करीब रखना चाहिए क्योंकि वे तो बिना पानी, बिना साबुन हमें हमारी नकारात्मक आदतों को बताते हैं जिससे हम उन नकारात्मक विचारों को सुधार कर सकारात्मक बन सकते हैं।

- *साईं इतना दीजिये, जा में कुटुम्ब समाय,*
  मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु ना भूखा जाय।

अर्थ: कबीर इस दोहे में भगवान से पूरी दुनिया के लोगों की तरफ से प्रार्थना कर रहे हैं और कह रहे हैं - हे प्रभु ! मुझ पर बस इतनी कृपा रखना कि मेरा परिवार सुख शांति से रहे, ना मैं और मेरा परिवार भूखा रहे और ना ही कोई साधु मेरे घर से भूखा लौटे।

- *दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार,*
  तरुवर ज्यों पत्ता झड़े, बहुरि न लागे डार।

अर्थ: कबीर इस दोहे में मनुष्य की तुलना पेड़ से करते हुए जीवन का मोल समझा रहें हैं और कहते हैं कि इस संसार में मनुष्य का जन्म मुश्किल से मिलता है, यह मानव शरीर उसी प्रकार बार-बार नहीं मिलता जैसे किसी वृक्ष से पत्ते झड़ जाए तो दोबारा डाल पर नहीं लगते।

- *बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर,*
  पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर।

अर्थ: कबीर इस दोहे में खजूर के पेड़ को मनुष्य का उद्धरण देते हुए कहा है, यूँ ही बड़ा कद या ऊँचा हो जाने से कोई मनुष्य बड़ा नहीं हो जाता। अच्छा कर्म करने वाला व्यक्ति ही हमेशा बड़ा होता है क्योंकि बड़ा और ऊँचा तो खजूर का पेड़ भी होता है परन्तु उसकी छाया रास्ते में जा रहे लोगों को कुछ समय के लिए भी आराम नहीं दे सकती, और फल इतनी ऊँचाई में लगते हैं कि उन्हें तोड़ना भी बहुत मुश्किल होता है।

- *तिनका कबहुँ ना निन्दिये, जो पाँयन तर होय,*
  कबहुँ उड़ी आँखिन पड़े, तो पीर घनेरी होय।

अर्थ: इस दोहे में भी कबीर अच्छे विचारों और मन में कड़वाहट को हटाने का उद्धरण दे रहे हैं। कबीरदास जी कह रहे हैं कि जीवन में कभी भी नीचे पड़े हुए तिनके तक की निंदा भी ना करिए जो पैर के नीचे चुभ गया हो क्योंकि अगर वही तिनका आँख में आ गिरा तो बहुत दर्द होगा।

- *माया मरी ना मन मरा, मर-मर गए शरीर,*
  आशा तृष्णा ना मरी, कह गए दास कबीर।

अर्थ: कबीर समझा रहे हैं, मनुष्य की इच्छा, उसका धन, उसका शरीर, सब कुछ नष्ट हो जाता है फिर भी मनुष्य की आशा और भोग की आस नहीं समाप्त होती।

- *जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान,*
  मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

अर्थ: इस दोहे में कबीर लोगों को जात-पाँत के भेदभाव को छोड़ जहाँ से ज्ञान मिले वहां से ज्ञान बटोरने की बात की है। यह समझाते हुए कह रहे हैं किसी भी विद्वान व्यक्ति की जाति ना पूछ कर उससे ज्ञान सीखना-समझना चाहिए, तलवार के मोल को समझो, उसके म्यान का कोई मूल्य नहीं।

- *अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप,*
  अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।

अर्थ: कबीर का कहना है – जिस प्रकार ना तो अधिक वर्षा होना अच्छी बात है और ना ही अधिक धूप उसी प्रकार जीवन में ना तो ज्यादा बोलना अच्छा है, ना ही अधिक चुप रहना ठीक है।

- *कनक-कनक तै सौ गुनी मादकता अधिकाय,*
  वा खाए बौराए जग, या देखे बौराए।

अर्थ: इस दोहे में कबीर बार-बार कनक शब्द का उचारण करके उसके दो अर्थ समझा रहे हैं। पहले कनक का अर्थ धतूरा और दूसरे कनक का अर्थ स्वर्ण बताते हुए कह रहे हैं कि जिस प्रकार मनुष्य धतूरा को खाने पर भ्रमित पागल-सा हो जाता है ठीक उसी प्रकार स्वर्ण को देखने पर भी भ्रमित हो जाता है।

14 देशभक्ति/मातृभूमि स्वर्ग से बढ़कर है (Patriotism / Motherland is More than Paradise)

- *"छीनता हो स्वत्व कोई और तू, त्याग-तप से काम ले, यह पाप है।*
  पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।" **-राष्ट्रकवि दिनकर**

- *"पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है,*
  खाके-वतन का मुझको हर जर्रा देवता है।" **-इकबाल**

- ***"जननी जन्मभूमिश्च स्वार्गादपि गरीयसी।"***

भारतीय संस्कृति के अनुसार अपनी माता (जननी) की गोद और मातृभूमि (जन्मभूमि) के आशीर्वाद और वात्सल्य से मिलने वाला सुख स्वर्ग के संभावित सुख से भी अधिक है। जननी (माँ) एवं जन्मभूमि (मातृभूमि) स्वर्ग से भी श्रेष्ठतर होती हैं। माँ जन्म देती है और मातृभूमि लालन-पालन करती है। यह सूक्ति व्यक्ति को जननी एवं जन्मभूमि की सेवा करने के लिए प्रेरित करती है।

- *"जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।*
  वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।"
  "जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
  वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है।" **-मैथिलीशरण गुप्त**

जिसको अपने देश के प्रति गौरव, अभिमान न हो वह नर पशु एवं मृतक समान है।

- *सागर चरण पखारे, गंगा शीश चढ़ावे नीर,*
  मेरे भारत की माटी, है चन्दन और अबीर
  सौ-सौ नमन करूँ, मै भैया, सौ-सौ नमन करूँ।

- *तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित,*
  चाहता हूँ देश की धरती, तुझे कुछ और भी दूँ।'

- *'देश-भक्ति पवित्र सलिला भागीरथी के समान है जिसमें स्नान करने से शरीर ही नहीं अपितु मनुष्य का मन और अन्तरात्मा भी पवित्र हो जाती है।'*

- *'जिएँ तो सदा उसी के लिए,*
  यही अभिमान रहे यह हर्ष,
  निछावर कर दें हम सर्वस्व,
  हमारा प्यारा भारतवर्ष।' — *जयशंकर प्रसाद*

- *जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं*
  वह हृदय नहीं पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

- *'देश-प्रेम वह पुण्यक्षेत्र है, अमल असीम त्याग से विलसित,*
  जिसकी दिव्य रश्मियाँ पाकर, मनुष्यता होती है विकसित।'

- *मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक।*
  मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएँ वीर अनेक। — *माखनलाल चतुर्वेदी*

15 कुछ महत्वपूर्ण शब्द (Some Important Terms)

- **उदारीकरण (Liberalization):** वह नीति या कार्यवाही है जिसके अंतर्गत आर्थिक गतिविधि की कार्यकुशलता (Efficiency) और उससे मिलने वाला लाभ (Profit) की अधिकतम वृद्धि के लिए उस पर से सरकारी प्रतिबंध (Restrictions) और नियंत्रण (Controls) हटा दिए जाते हैं, या उनमें ढील दे दी जाती है ताकि बाजार की शक्तियों (Market Forces) को बेरोक-टोक काम करने दिया जाए। इसके साथ यह विश्वास जुड़ा है कि आर्थिक गतिविधि में कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए मांग और पूर्ति (Demand and Supply) तथा मुक्त प्रतिस्पर्धा (Free Competition) के नियम को काम करने देना चाहिए; साथ ही व्यापारियों के लिए निजी लाभ (Private Profit) और कामगारों के लिए प्रोत्साहनों (Incentives) की विस्तृत गुंजाइश रखनी चाहिए।

  इस नीति के अंतर्गत व्यक्तियों के कल्याण (Welfare) के लिए राज्य के उत्तरदायित्व को कम करने की कोशिश की जाती है। उदारीकरण के समर्थक यह मानते हैं कि राज्य की कल्याणकारी गतिविधियों को बढ़ाने से व्यक्ति स्वयं परिश्रम से विमुख हो जाते हैं और राज्य के ससाधनों पर भी जरूरत से ज्यादा बोझ पड़ता है। फिर, जो लोग अपनी सूझ-बूझ और कठिन परिश्रम के बल पर राज्य की समृद्धि को बढ़ाते हैं, उन पर करों का बोझ बहुत बढ़ जाता है, और वे भी परिश्रम से विमुख हो सकते हैं। अत: सब तरह के लोगों को परिश्रम की ओर प्रेरित करने के लिए राज्य कल्याणकारी सेवाओं को सीमित करना जरूरी है।

- **वैश्वीकरण/भूमंडलीकरण (Globalisation):** वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यापार अवरोधकों (Trade Barriers) को कम कर या दूर कर विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं का समन्वय किया जाता है ताकि विभिन्न देशों में वस्तुओं एवं सेवाओं का बेरोक-टोक आदान प्रदान हो सके। इस प्रक्रिया में ऐसा वातावरण विकसित किया जाता है ताकि प्रौद्योगिकी (तकनीक), वस्तुओं, पूंजी, आँकड़ों, विचारों और श्रम या मानवीय पूंजी का विभिन्न देशों में निर्बाध प्रवाह हो सके। इससे व्यापार अवसरों का विस्तार होता है तथा व्यापार देश की सीमाओं तक सीमित न होकर विश्व

व्यापार में निहित तुलनात्मक लाभ दशाओं का दोहन करने की दिशा मे आगे बढ़ता है। इस रूप में विश्व के विभिन्न देशों के मध्य दूरियों एवं बाधाओं का कम होना, सिमट जाना, एकाकार हो जाना ही वैश्वीकरण है।

- **निजीकरण (Privatization):** संकुचित अर्थ में निजीकरण ऐसी आर्थिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सरकारी क्षेत्र के किसी उपक्रम या औद्योगिक इकाई के स्वामित्व को पूर्णत: या अंशत: निजी स्वामित्व तथा नियंत्रण में लाया जाता है या निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित किया जाता है। इसके अंतर्गत किन्हीं विशेष वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन या वितरण को सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) के स्वामित्व और नियंत्रण (Ownership and Control) को हटाकर निजी या गैर-सरकारी क्षेत्र (Private Sector) को उसका स्वामित्व या नियंत्रण प्राप्त करने की अनुमति दी जाती है ताकि उसकी कार्यकुशलता बढ़ायी जा सके, उससे होने वाले वित्तीय हानि को रोका जा सके। व्यापक अर्थ में अर्थव्यवस्था में निजीकरण से तात्पर्य विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में निजी क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि से है। जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोल देना, देश के आर्थिक क्रियाकलापों में सरकार की भागीदारी को कम करना, वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण में निजी क्षेत्र की भागीदारी में वृद्धि करना सम्मिलित है।

- **समावेशी विकास (Inclusive Developtment):** समावेशी विकास का सामान्य अर्थ है- आधारभूत विकास, सहभागी विकास तथा गरीब समर्थक विकास। इसमें यह भाव निहित है कि आर्थिक विकास की उच्च दर से जनित राष्ट्रीय आय के वितरण में समाज के सबसे कमजोर वर्ग को उचित हिस्सा मिले अर्थात् राष्ट्रीय आय का रिसाव प्रभाव नीचे की ओर अधिक हो और साथ ही सभी भौगोलिक क्षेत्रों की सभी आर्थिक असमानताएँ समाप्त हो। इस प्रक्रिया से मानव की बुनियादी सुविधाएँ यथा- स्वच्छ पेयजल, शिक्षा, स्वास्थ, पौष्टिक भोजन तथा स्वस्थ वातावरण मिलता है। यह समतामूलक विकास पर आधारित है। समावेशी विकास न्यायप्रिय समाज की स्थापना की मांग करता है। न्यायप्रिय समाज वह है जहाँ विकलांगों, वंचितों तथा निर्बलों को एक सीमा तक संरक्षण प्राप्त होता है।

  संविधान के अनुच्छेद 16, 19, 46, 164, 243, 244, 295, 330, 332, 334, 335, 338, 339, 340, 342 में पिछड़ों, वंचितों एवं उपेक्षित वर्गों के विकास को राज्य का संवैधानिक दायित्व निर्धारित किया गया है।

  सामाजिक न्याय की अवधारणा में विशेष रूप से समाज के कमजोर, उपेक्षित, साधन विहीन लोगों को शिक्षित एवं जागरूक करते हुए उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया में भागीदार बनाना, समतामूलक एवं संतुलित क्षेत्रीय विकास करना, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार में वृद्धि करना, समाज के सभी क्षेत्रों एवं सभी वर्गों का विकास करना और नागरिकों को अच्छा जीवन प्रदान करना है।

  समावेशी विकास सामाजिक न्याय से संबंधित है। यदि सामाजिक न्याय साध्य है तो समावेशी विकास इसका साधन है।

- **नवाचार/नवप्रवर्तन (Innovation):** नवप्रवर्तन से तात्पर्य पहले से चली आ रही व्यवस्था, स्थापित कानूनों, रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों एवं प्रक्रिया में परिवर्तन लाकर नई व्यवस्था लागू करने से है। उत्पादन प्रक्रिया में नई तकनीक को अपनाना ही नवप्रवर्तन कहलाता है।

- **ई-गवर्नेन्स (E-Governance):** शासन के विभिन्न घटकों-विभागों एवं मन्त्रालयों के सभी स्तरों का कम्प्यूटर आधारित नेटवर्क से जोड़कर नीति निर्धारक, संसाधन आवंटन, कार्यक्रम कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन की प्रणाली ई-गवर्नेन्स कहलाती है।

ई-प्रशासन से सरकार और ग्रामीणों के बीच सीधा सम्पर्क कायम होगा। ई-प्रशासन को भू-अभिलेख, सड़क परिवहन, वाणिज्य कर, रोजगार केन्द्र, कोषागार, भू-पंजीयन, पुलिस प्रशासन एवं शिक्षा आदि महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रारम्भ किया गया है।

सुशासन (Good Governance): सुशासन एक बहुआयामी एवं गतिशील अवधारणा है, जो एक बेहतर समाज के लिए विभिन्न आदर्शों को समाहित किये हुए है। इसका तात्पर्य एक ऐसी शासन व्यवस्था से है जो जनहित के लिए प्रतिबद्ध हो तथा नि:स्वार्थ भाव से राष्ट्र एवं समाज को इस प्रकार से मार्गदर्शित एवं निर्देशित कर सके कि समाज अपनी क्षमताओं एवं उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। सुशासन का आशय है- सम्यक् रूप से शासन। जब राज्य की मशीनरी एवं संस्थाएँ मूल्यों से युक्त होकर

उचित कर्त्तव्यों का पालन करते हुए उत्कृष्टता को प्राप्त करती है तो फिर उसे सुशासन कहते हैं। सुशासन की अवधारणा के मूल में विधि का शासन, प्रभावी एवं कुशल प्रशासन, नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार, मितव्ययी प्रशासन, सामाजिक एवं प्रशासनिक जवाबदेहिता, पारदर्शिता, जनसहभागिता, प्रभावशीलता, दक्षता, सूचना की उपलब्धता, अनुक्रियाशीलता, मानवाधिकार संरक्षण, समानता एवं नागरिक केन्द्रित शासन आदि को स्वीकार किया जाता है। यह *जनोन्मुख, विकासोन्मुख, कल्याणोन्मुख एवं मूल्योन्मुख शासन* को इंगित करता है। सुशासन होने पर गुणवत्तापूर्ण सेवा की त्वरित आपूर्ति होती है। इससे जनता के जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है।

सुशासन की अवधारणा वस्तुत: **'SMART'** शासन की अवधारणा है।

यहाँ SMART का आशय है-

- S – Simple/Small (सरल/छोटा) – शासन में औपचारिक एवं जटिल प्रक्रिया के बजाये लक्ष्य एवं परिणाम पर बल देना चाहिए।
- M – Moral (नैतिक) – निर्णय एवं कार्यों के सम्पादन के क्रम में निर्धारित कर्त्तव्य एवं मूल्यों को ध्यान में रखा जाए।
- A – Accountable (जवाबदेह) – शासन अपने निर्णयों एवं कार्यों के लिए जनता एवं जनप्रतिनिधियों के प्रति जवाबदेह हो।
- R – Responsible/Responsive (उत्तरदायित्वपूर्ण/अनुक्रियाशील) – आम जनता की समस्याओं के प्रति अनुक्रियाशील हो।
- T – Transparent (पारदर्शी) – निर्णय और कार्य के सम्बन्ध में "क्यों और कैसे" को गोपनीय बनाने की बजाय उसकी जानकारी आम जनता को उपलब्ध हो।

16 संस्कृतिकरण (Sanskritization)

परंपरागत भारतीय समाज और संस्कृति को प्रभावित करने तथा सामाजिक परिवर्तन को एक नई दिशा देने वाली प्रक्रियाओं में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया या सम्प्रत्यय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संस्कृतिकरण की अवधारणा भारत के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. एम.एन. श्रीनिवास से जुड़ी है। इसके माध्यम से उन्होंने भारतीय जाति-प्रथा की संरचना तथा उसके संस्तरण (Stratification) में होने वाले परिवर्तनों को समझाने का प्रयास किया है।

संस्कृतिकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें निम्न जाति के सदस्य प्राय: ऊँची जाति के कर्मकाण्डों, रहन-सहन एवं जीवन-पद्धति का अनुकरण एवं अनुसरण करके अपनी परम्परागत स्थिति को ऊँचा करने का प्रयत्न करते हैं।

संस्कृतिकरण की व्याख्या करते हुए डॉ. एम.एन. श्रीनिवास अपनी पुस्तक 'Social Change in Modern India' में यह कहते हैं कि 'संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई निम्न हिन्दू जाति या जनजाति अथवा अन्य समूह किसी उच्च और प्राय: द्विज जाति की दिशा में अपने रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन-पद्धति को बदलता है।'

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संस्कृतिकरण का तात्पर्य नवीन रीति-रिवाजों और आदतों को अपनाना मात्र नहीं है, अपितु उन नये विचारों और मूल्यों यथा पाप-पुण्य, धर्म-कर्म, माया-मोक्ष आदि को भी स्वीकार करना है जिसका उल्लेख धार्मिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में किया गया है।

17 संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण (Sanskritization and Westernization)

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देने में पश्चिमीकरण का योगदान रहा है। संस्कृतिकरण तथा पश्चिमीकरण, दोनों सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ हैं। पश्चिमीकरण एक बाहरी प्रक्रिया है तथा इसका प्रारम्भ मुख्य रूप से अंग्रेजी शासनकाल में हुआ, जबकि संस्कृतिकरण एक आन्तरिक प्रक्रिया है जो कि भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही होती रही है। परिवर्तन की प्रक्रियाएँ होने के बावजूद दोनों की प्रकृति एवं प्रभाव में काफी अन्तर है।

1. संस्कृतिकरण में धार्मिक दृष्टिकोण (Religious Outlook) को प्रोत्साहन दिया जाता है। पश्चिमीकरण लौकिक दृष्टिकोण (Secular Outlook) को प्रोत्साहन देता है।
2. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया भारतीय समाज के एक विशिष्ट अंग अर्थात् जनजातियों व निम्न जातियों तक ही सीमित है। पश्चिमीकरण का सम्बन्ध भारतीय समाज के सभी अंगों व जातियों से है।
3. पश्चिमीकरण की प्रक्रिया विदेशी और बाह्य है, जबकि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया आन्तरिक व स्वदेशी है।
4. संस्कृतिकरण का आदर्श सभी जगह एक-सा नहीं है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न जातियाँ संस्कृतिकरण का आदर्श हैं। इसके विपरीत, सारे भारत में पश्चिमीकरण का एक ही अंग्रेजी आदर्श पाया जाता है।
5. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया रूढ़िवादी है जबकि पश्चिमीकरण की प्रकृति तार्किक है।
6. संस्कृतिकरण करने वाली जाति ऊपर की ओर गतिशील होती है और उसकी पदमूलक स्थिति में परिवर्तन आ जाता है, जबकि पश्चिमीकरण करने वाली जाति की गतिशीलता में परिवर्तन नहीं आता है।

18 गाँधी (Gandhi)

साधन एवं साध्य संबंधी विचार:- गाँधी फासीवादियों एवं नारीवादियों (साम्यवादी) की इस अवधारणा का खंडन करते हैं कि साध्य, साधन के औचित्य को निर्धारित करता है। इनके अनुसार यदि साध्य उचित हो तो फिर उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के साधन का प्रयोग करना गलत नहीं है जैसा कि साम्यवादी हिंसा को लक्ष्य प्राप्ति हेतु उचित मानते हैं। गाँधी इसके विपरीत साधन और साध्य (लक्ष्य) दोनों की श्रेष्ठता एवं पवित्रता की बात करते हैं। उनके अनुसार 'साधन और साध्य में अवियोज्य संबंध है। साध्य की प्रकृति साधन की प्रकृति से निर्धारित होती है। साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि साधन अनैतिक है तो साध्य अपने अंतिम रूप में पथभ्रष्ट होने से नहीं बच सकता। इनके अनुसार जिस अनुपात में साधन का अनुष्ठान होगा उसी अनुपात में साध्य की प्राप्ति होगी।

गाँधी के अनुसार **"साधन बीज रूप है साध्य वृक्ष रूप"**, यही कारण है कि गाँधी साध्य की पवित्रता के साथ साधन की पवित्रता को भी स्वीकार करते हैं।

गाँधी के अनुसार- उत्पादन के साधन ऐसे हों जिससे सतत् विकास हो सके, ताकि प्रकृति एवं वर्तमान मनुष्य तथा भावी पीढ़ी को सुरक्षित रखा जा सके।

यहाँ गाँधी मानव जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नैतिक नियमों के पालन की बात करते हैं। इन नैतिक नियमों को यहाँ 'व्रत' कहा गया है। यहाँ एकादश (11) व्रत निर्धारित हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, निर्भिकता, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी, शारीरिक श्रम एवं अस्पृश्यता निवारण।

यंग इंडिया (1925) में सात सामाजिक पापों के बारे में बताया गया है जिसके कारण मनुष्य व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में अनैतिक गतिविधियों में लिप्त होता है।

सामाजिक पाप

1. सिद्धान्तविहीन राजनीति (Politics Without Principles)
2. बिना काम के धन (Wealth Without Work)
3. बिना अंत:करण के सुख (Pleasure Without Conscience)
4. चरित्ररहित ज्ञान (Knowledge Without Character)
5. नैतिकता विहीन व्यापार (Commerce Without Morality)
6. मानवताविहीन विज्ञान (Science Without Humanity)
7. त्यागरहित पूजा (Worship Without Sacrifice)

निजी एवं सार्वजनिक संबंधों में नैतिकता को बढ़ाने हेतु इन सामाजिक पापों का निराकरण आवश्यक है। इसके लिए एकादश व्रत का अनुपालन आवश्यक है।

महात्मा गाँधी के द्वारा 'यंग इंडिया' में वर्णित सात सामाजिक पापों की विपरीत स्थिति को हम नैतिकता के सार तत्त्व के रूप में देख सकते हैं। **जीवन में नैतिकता को बढ़ावा देने के लिए इन सात साामाजिक पापों के विपरीत स्थिति को स्वीकार करना होगा।**

सात पापों की विपरीत स्थिति

1. नीतियुक्त राजनीति
2. श्रम आधारित धन
3. अंत:करणयुक्त सुख
4. चरित्रयुक्त ज्ञान
5. नैतिकता आधारित व्यापार
6. मानवता-उन्मुख विज्ञान
7. त्यागयुक्त पूजा

सहअस्तित्त्व का तात्पर्य है कि दो पक्षों में मतभेद के होते हुए भी एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता (Tolerence) का बर्ताव। सहअस्तित्त्व केवल साथ-साथ जीवन व्यतीत करना मात्र नहीं है। पुन: इसका आशय **'मतभेदों का अभाव'** या **'मतभेदों का अन्त'** भी नहीं है। परस्पर विरोध के बावजूद भी शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करना ही सहअस्तित्त्व है। सहअस्तित्त्व का आदर्श यह मानता है कि प्रत्येक मनुष्य के अधिकार का मूल्य समान होता है। सामाजिक जीवन में इसका व्यावहारिक रूप इस रूप में उभरकर सामने आता है कि **"अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का सम्मान करना।"** स्पष्ट है कि सहअस्तित्त्व इस रूप में अहिंसा की प्रागपेक्षा करता है।

नैतिक जीवन में सहअस्तित्त्व की अवधारणा सहजीवन के रूप में दिखाई देती है। नैतिकता की यह माँग है कि जो व्यवहार हम खुद चाहते हैं वही दूसरों से भी करें। सामाजिक विकास के लिए यह आवश्यक है।

इस प्रकार सहअस्तित्त्व की अवधारणा व्यक्तिवाद, स्वार्थवाद, संकुचित दृष्टिकोण आदि का विरोध करती है, क्योंकि सामाजिक विकास की धारा में ये बाधक हैं।

प्राय: यह माना जाता है कि हिंसा ही सहअस्तित्त्व का आधार है। इस हिंसा को अपनाकर ही विभिन्न व्यक्ति समाज के अन्दर अपनी उपस्थिति बनाये रखते हैं। विभिन्न राज्य भी इसी हिंसा के जरिये अपनी आन्तरिक शासन व्यवस्था को भी संचालित करते रहे हैं।

पश्चिमी विचारकों में डार्विन, मार्क्स, नीत्से, जॉर्ज सॉरेल एवं हिटलर के नाजीवाद, मुसोलिनी के फांसीवादी सिद्धान्तों में हिंसा को महिमामण्डित किया गया है।

डार्विन की- योग्यतम की उत्तरजीविता का सिद्धान्त, **हिटलर की युक्ति-** जिसे जीना होगा, उसे युद्ध करना होगा, **मार्क्स का-** वर्ग संघर्ष एवं क्रांति का सिद्धान्त, **नीत्से का-** अतिमानव का सिद्धान्त तथा समकालीन युग में **जॉर्ज सॉरेल का-** "संरचनात्मक बल प्रयोग रूपी हिंसा का सिद्धान्त" प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

गाँधीजी का विचार

इन समस्त विचारकों के विरूद्ध गाँधी एक महत्त्वपूर्ण विचारक हैं जो जैन ग्रंथों से प्रेरणा लेते हुए 'अहिंसा परमोधर्म:' का उद्घोष करते हैं। इनका मानना है कि *"हिंसा पशुओं का प्राकृतिक नियम है एवं अहिंसा मनुष्य का स्वाभाविक गुण है।"* गाँधी का मानना है कि अहिंसा समग्र रूप में या पूरे समाज के लिये वैसे ही जरूरी है जैसे किसी एक व्यक्ति के लिये।

गाँधी के अनुसार अहिंसा के दो रूप हैं- 1. नकारात्मक - मन, वचन एवं कर्म तीनों से हिंसा नहीं करना, 2. सकारात्मक- प्रेम, दया, करूणा का भाव विकसित करना।

गाँधी का मानना है कि हिंसा कभी भी सहअस्तित्त्व के रूप में सार्वभौमिक रूप नहीं ले सकती, क्योंकि यदि सभी व्यक्तियों द्वारा इसे अपना लिया जाए तो पूरे समाज एवं व्यक्ति का समूल नाश हो जायेगा। अर्थात् हिंसा कुछ सक्षम लोगों का ही हथियार/साधन है। जबकि अहिंसा सार्वभौमिक रूप से अपनाई जा सकती है। इसमें किसी भी विरोध की स्थिति नहीं

उत्पन्न होगी। मनुष्य स्वभाव से ही करूणा, दया भाव रखता है एवं अहिंसक होता है। हिंसा मनुष्य का नहीं अपितु पशुता का द्योतक है। इसी आधार पर गाँधी ने अहिंसा को व्यक्तिगत स्तर से ऊपर उठाते हुए इसे संस्थागत रूप प्रदान किया। अर्थात् समाज एवं राज्य के अस्तित्त्व के लिये भी अहिंसा को आवश्यक मूल्य बताया। गाँधी के पूर्व के विचारकों का मानना था कि अहिंसा व्यक्तिगत स्तर पर ही पालित हो सकती है। समाज, राष्ट्र एवं विश्व हिंसा पर ही अवलम्बित है, किन्तु गाँधी इसका विरोध करते हैं। उनके अनुसार अहिंसा का पालन सार्वभौम स्तर पर (समाज एवं राष्ट्र के स्तर पर) आवश्यक है ताकि सहअस्तित्त्व की भावना को सकारात्मक रूप से समाज में स्थापित किया जा सके।

गाँधीजी का हिंसा संबंधित विचार

गाँधीजी के अनुसार हिंसा पशुओं का प्राकृतिक स्वभाव है। जबकि अहिंसा मानव जाति का नियम है। हिंसा से गाँधीजी का आशय केवल हत्या करना या कष्ट देना मात्र नहीं बल्कि प्रत्येक शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं विषमता में हिंसा व्याप्त है। उनके अनुसार वर्तमान की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था हिंसा पर आधारित है। राज्य के पास जो दण्ड शक्ति है, वह भी हिंसा का ही रूप है। इस दण्ड शक्ति के आधार पर कोई स्थायी नैतिक समाज बनाना या मूलभूत सामाजिक परिवर्तन लाना संभव नहीं है।

स्थायी, सकारात्मक समाज परिवर्तन के लिए वैचारिक क्रांति की आवश्यकता है। इसके लिए जनता के आत्मबल, नैतिक बल एवं कर्त्तव्य-शक्ति को जाग्रत करना होगा।

मार्क्सवादी जहाँ सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन हेतु सामान्यतः हिंसक क्रांति की बात करते हैं, वहीं गाँधीजी का कहना है कि **क्रांति के साथ हिंसा का मेल नहीं है।** क्रान्ति का अर्थ आमूल-चूल परिवर्तन है। क्रान्ति यदि हमारी मान्यता में आधारभूत परिवर्तन को माना जाए तो इसे बल प्रयोग या हिंसा के माध्यम से नहीं पाया जा सकता, क्योंकि-

1. इससे मानवीयता का ह्रास होता है। समाज में कटुता व वैमनस्यता पैदा होती है।
2. हिंसा से क्रान्ति करने पर अनवस्था दोष की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।
3. हिंसा प्रतिहिंसा का दौर शुरू हो सकता है। पुनः हिंसा के द्वारा यदि कोई सुन्दर कार्य हो भी जाता है तो वह अस्थायी होता है। परन्तु जो अहित होता है, वह स्थायी होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिंसा का प्रयोग करने वाले स्वयं हिंसा की आग में जल जाते हैं।
4. मानवीय सभ्यता के विकास के इस सोपान पर बर्बरता शोभा नहीं देती। हिंसक युद्ध, मत्स्य-न्याय या जंगल कानून के समान है।

गाँधीजी का मानना है कि सच्चे अर्थों में अहिंसक बनने के लिए जनतांत्रिक बनना न्यूनतम शर्त है और सच्चे रूप में जनतांत्रिक दृष्टि के लिए अहिंसक दृष्टि आवश्यक है। हिंसा से जनतंत्र का मेल नहीं हो सकता, क्योंकि–

1. हिंसा जहाँ दण्ड शक्ति में विश्वास करती है, वहाँ जनतंत्र विचार शक्ति में आस्था रखता है।
2. हिंसा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का शत्रु है, जबकि जनतंत्र की सारी बुनियाद उसी पर है।
3. हिंसा वोट में नहीं चोट में विश्वास करती है, जबकि जनतंत्र के लिए वोट या जनमत ही सार-सर्वस्व है।
4. हिंसा नियम एवं कानून का निषेध है, जबकि जनतंत्र का आधार ही विधि का शासन (Rule of Law) है।
5. हिंसा शक्ति किसी विशेष व्यक्ति या गुट के अधीन रहती है और उसी की इच्छा प्रभावकारी होती है, जबकि जनतंत्र में सामान्य जन-इच्छा की ही संप्रभुता है।

इस प्रकार ऐसा कहा जा सकता है कि जितनी हिंसा होगी, उतनी ही कम स्वतंत्रता, समानता और न्याय की प्राप्ति होगी जो कि जनतंत्र के मूल में नहीं है। अतः हिंसा की अवधारणा का सहअस्तित्त्व के साथ सकारात्मक मेल नहीं है।

सर्वधर्म समभाव (Respect For All Religions)

विभिन्न धर्मों के मध्य सामंजस्य एवं सौहार्द्र स्थापित करने तथा परस्पर वैमनस्य एवं सांप्रदायिकता की समस्या के समाधान के संबंध में एक उपाय यह हो सकता है कि हम अपने धर्म के साथ-साथ दूसरों के धर्मों का भी समान आदर करें। सत्य,

अहिंसा एवं उदारता पर आधारित इस विचारधारा को गाँधीजी ने 'सर्वधर्म समभाव' की संज्ञा दी है। गाँधी द्वारा उल्लिखित एकादश व्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शारीरिक श्रम, अस्वाद, अभय, स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण और सर्वधर्म समभाव) में इसे एक अनिवार्य व्रत के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका निष्ठापूर्वक पालन करना मनुष्यों के लिये अनिवार्य है। गाँधी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त के अनुसार ही सदैव आचरण करना चाहिए। इस अवधारणा में सभी धर्मों को समान रूप से उत्कृष्ट एवं सम्माननीय माना जाता है। गाँधी अपने इस सर्वधर्म समभाव की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि *"अपने-अपने धर्म के सिद्धांतों के अनुसार आचरण करते हुए हमें एक-दूसरे के उत्तम सिद्धांतों को स्वीकार करना चाहिए और इस प्रकार ईश्वर तक पहुंचने के मानव-प्रयास में अपना योगदान देना चाहिए।... मेरा अपना विचार यह है कि सभी महान धर्म मूलतः समान हैं। हमें दूसरे धर्मों का उसी प्रकार आदर करना चाहिए जिस प्रकार हम अपने धर्म का सम्मान करते हैं।... मेरे विचार में विभिन्न धर्म एक ही उद्यान के सुंदर फूल तथा एक ही महावृक्ष की शाखाएँ हैं, अतः वे समान रूप से सत्य हैं। परन्तु वे समान रूप से अपूर्ण भी हैं, क्योंकि मनुष्य ही उन्हें ग्रहण करते हैं और उनकी व्याख्या करते हैं।"*

"विविध धर्म एक ही जगह पहुंचने वाले अलग-अलग रास्ते हैं। एक ही जगह पहुंचने के लिए हम अलग-अलग रास्ते लें तो इसमें दुःख का कोई कारण नहीं है। सच पूछो तो जितने मनुष्य हैं उतने ही धर्म भी हैं।"

स्पष्ट है कि गाँधी की सर्वधर्म समभाव की इस अवधारणा में न तो सभी धर्मों के समन्वय का आग्रह है और न ही किसी एक धर्म को सार्वभौम धर्म मान लेने का भाव। यहाँ इसकी स्पष्ट स्वीकृति है कि संसार में अनेक धर्म हैं जो पृथक-पृथक हैं और इनकी पृथकता बनी रहेगी। इसी कारण यह सिद्धान्त हमें बतलाता है कि हमें सभी धर्मों को समुचित महत्त्व देते हुए इन सबका समान रूप से आदर करना चाहिए। इसी से धार्मिक सहिष्णुता और उदार दृष्टिकोण का प्रसार होगा तथा विभिन्न धर्म के अनुयायियों के मध्य से वैमनस्य, कटुता, संघर्ष, कट्टरता इत्यादि को दूर किया जा सकता है। गाँधी से पूर्व विवेकानन्द ने भी सर्वधर्म समभाव की अवधारणा प्रस्तुत की थी।

'धार्मिक सहिष्णुता' में दूसरे के धर्मों को अच्छा न समझने पर भी उन्हें सहन करने का भाव विद्यमान है जबकि वास्तव में होना यह चाहिए कि हम सभी धर्मों को समान रूप से महत्त्वपूर्ण मानें, तभी उनके प्रति आदर-भाव आयेगा। इसीलिए गाँधीजी सर्वधर्म समभाव को प्रस्तुत करते हैं।

गाँधी धर्मान्तरण का विरोध करते हैं। धर्म-परिवर्तन न नैतिक रूप से ठीक है और न ही आध्यात्मिक रूप से उपयुक्त है। उनके अनुसार जब सभी धर्मों में समान भाव है तो फिर एक धर्म छोड़कर दूसरे धर्म में प्रवेश निरर्थक है। इससे परस्पर वैमनस्य उत्पन्न हो सकता है। धर्मांतरण में यह दिखाने की कोशिश की जाती है कि व्यक्ति अपने जिस परंपरागत धर्म को छोड़ता है, वह असत्य है, निकृष्ट है। जबकि जिस नये धर्म में वह दीक्षित होता है, वह सत्य है, उत्कृष्ट है। गाँधी के अनुसार ऐसा विचार अविवेकपूर्ण एवं असंगत है। अविवेकपूर्ण इसलिए, क्योंकि ऐसा विचार रखने वाला व्यक्ति धर्म के वास्तविक मर्म को नहीं समझता। पुनः यह असंगत भी है, क्योंकि ऐसा विचार धर्म को एक 'मार्ग' या 'सम्प्रदाय' समझता है। जबकि धर्म का निहितार्थ उसका लक्ष्य (शांति, आनन्द, सर्वोदय आदि) है तथा उत्पन्नित फल विराट मानवता है। गाँधीजी के अनुसार 'मार्ग' के रूप में धर्म सदैव अनेक रहेंगे, जबकि सभी धर्मों का लक्ष्य एक होगा। जो भी धर्म के संबंध में इन मूलभूत बातों को समझ लेता है, वह सदैव अपने धर्म के प्रति निष्ठा रखता है और अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णुता और आदर-भाव रखने वाला हो जाता है। चूँकि सभी धर्म सत्य हैं तथा सभी धर्मों में कुछ दोष भी है, अतः मनुष्य को यह चाहिए कि वह अपने धर्म के सकारात्मक पक्ष के अनुसार आचरण करते हुए अन्य धर्मों के भी भावात्मक पक्षों में सहभागी बनें, उन्हें ग्रहण करे।

गाँधीजी के अनुसार अन्य धर्मों के निन्दा करना और अपने धर्म की प्रशंसा करना एक हिंसात्मक आचरण है। सर्वधर्म समभाव की अवधारणा में इसका समर्थन है कि-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।"

19 विवेकानंद (Vivekanand)

1. देशवासियों के हृदय में देशप्रेम एवं समर्पण का भाव जागृत किया है जिससे प्रेरित होकर अनेकों ने अपने जीवन को देश के लिए उत्सर्ग कर दिया। इस रूप में राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने देश के प्रबुद्ध नवयुवकों में आत्म-गौरव एवं देशभक्ति उदात्त भावनाएं उत्पन्न की। उन्होंने कहा- **'उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त करने तक न रूको।'** आज भी युवाओं के जीवन में जब हताशा-निराशा होती है तो विवेकानंद का यह ओजस्वी, उत्साही एवं प्रेरणादायक संदेश जीवन में आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करता है।
2. उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भगवान का सबसे प्यारा रूप **'दरिद्र नारायण'** है। जब हम दरिद्र को नारायण मानकर उसकी सेवा और सहायता करेंगे तभी हमारी आत्मा का शुद्धिकरण होगा तब हम ईश्वर-साक्षात्कार के योग्य हो जायेंगे। अतः **गरीबों, असहायों एवं पीड़ित मानवता की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है। यही ईश्वर की प्राप्ति का साधन है और यह योग, ज्ञान, भक्ति, ध्यान आदि के समान ही पवित्र साधन है।** मानवमात्र की सेवा एवं उनका सम्मान ही नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक उत्थान की कुंजी है। इस प्रकार विवेकानंद ने मानवतावाद को आध्यात्मिक आधार पर प्रतिष्ठित और प्रसारित करने का प्रयास किया।
3. **धार्मिक बहुलतावाद (Religious Pluralism) का समर्थन:** स्वामी विवेकानंद ने सभी धर्मों के औचित्य और उनकी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया। उनके अनुसार सभी धर्मो का केन्द्र बिंदु ईश्वर है और हम से प्रत्येक उसकी प्राप्ति हेतु किसी एक रास्ते पर चल रहे हैं। धर्म के बाह्य स्वरूप में भिन्नता है परन्तु सबका आंतरिक उद्देश्य मानव-कल्याण है। ऐसी स्थिति में मनुष्य, मनुष्य के बीच प्रेम और सेवा का ही संबंध हो सकता है।

परन्तु वे घृणा, धार्मिक आडम्बर, धार्मिक रूढ़िवादिताओं, हठधर्मिता और कट्टरता के विरोधी थे। यदि सभी मनुष्यों को एक ही धर्म, उपासना की एक ही सार्वजनीन पद्धति और नैतिकता के एक ही आदर्श को स्वीकार करने के लिये प्रेरित या विवश किया जाए तो संसार के लिए यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात होगी। इससे धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति पर आघात पहुंचेगा। अतः अच्छे या बुरे उपायों द्वारा दूसरों को अपने धर्म, मान्यताओं और आदर्शों को दूसरों के ऊपर लागू करने का प्रयास न किया जाए। विवेकानंद के अनुसार कोई भी धर्म सार्वभौम हो सकता है यदि उसमें भेदभाव न हो, उसका द्वार सबके लिये खुला हो, यदि वह मानवतावादी हो। सभी धर्म मनुष्यों के लिये, मानव के जीवन-यापन के मार्ग हैं, अतः मानवतावादी हैं, सार्वभौम हैं। यदि मानव में मानवता है और मानवता सार्वभौम है तो सभी धर्म भी मानव के लिये हैं, मानवतावादी हैं, सार्वभौम हैं। इस प्रकार सार्वभौम धर्म कोई विशेष धर्म नहीं, वरन् किसी धर्म का मानवतावादी स्वरूप है। यह बिल्कुल वास्तविक है। जिस प्रकार सत्य सार्वभौम हो सकता है, उसी प्रकार धर्म भी सार्वभौम हो सकता है। विवेकानंद सार्वभौम धर्म का नया स्वरूप बतलाते हैं।

20 नकारात्मक एवं सकारात्मक पक्ष (Negative and Positive Side)

सामान्यतः अच्छे कर्म का सकारात्मक परिणाम और बुरे कर्म का नकारात्मक परिणाम होता है। परंतु कभी-कभी विपरीत स्थिति भी संभव है। तब वैसी स्थिति में उत्तरदायित्व के निर्धारण के समय परिस्थिति, संदर्भ, भावना उद्देश्य आदि को ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय क्रियाकलापों के परिणाम अलग-अलग होते हैं। चूंकि निबंध की विषय-वस्तु का संबंध जीवन के विभिन्न पक्षों से होता है, ऐसी स्थिति में निबंध लिखते समय इन क्षेत्रों के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों का उल्लेख कर सकते हैं।

1. सामाजिक क्षेत्र :

(a) नकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → लिंगभेद, जातिभेद, यौन उत्पीड़न, नस्लभेद, बाल विवाह, भ्रूण हत्या, शोषण एवं अत्याचार, दहेज प्रथा, भोगवाद, अस्पृश्यता, सामाजिक विषमता मानसिक अवसाद आदि को बढ़ावा।

(b) सकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → लिंग समानता, अस्पृश्यता निवारण, सामाजिक न्याय, बंधुत्व की भावना, मानवतावादी दृष्टिकोण, कुरीतियों का निवारण, सामाजिक सद्भाव, स्वच्छ भारत अभियान आदि को बढ़ावा।

2. आर्थिक क्षेत्र :

(a) नकारात्मक कार्य→परिणामस्वरूप → भ्रष्टाचार, घोटाला, कर-वंचना, गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, जमाखोरी, मुनाफाखोरी, मिलावट, लोकनिधि का दुरूपयोग, विकास की धीमी दर, कुपोषण, क्रोनी कैपिटलिज्म आदि।

(b) सकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → समावेशी विकास, सतत् विकास, गरीबी उन्मूलन, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति, सरकारी नीतियों एवं योजनाओं का प्रभावी एवं समयबद्ध क्रियान्वयन, आर्थिक स्वावलम्बन।

3. राजनीतिक क्षेत्र :

(a) नकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → राजनीतिक-आपराधिक गठजोड़, भ्रष्टाचार, जनहित के कार्यों से तटस्थता, भाई-भतीजावाद, सांप्रदायिकता, प्रांतवाद, भाषावाद, नक्सलवाद, आतंकवाद।

(b) सकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → लोकतंत्र की स्थापना, लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा साकारित, जन लोकपाल, जनहितैषी कार्यों में सलंगनता, लोकतांत्रिक मूल्यों का साकारीकरण, पंथनिरपेक्षता।

4. प्रशासनिक क्षेत्र :

(a) नकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → लाल फीताशाही, भ्रष्टाचार, औपनिवेशिक मानसिकता, नेताओं व नौकरशाहों के बीच गठजोड़, दायित्वों से पलायन, घूसखोरी, तरफदारी, दलगत निष्ठा, पक्षपातपूर्ण व्यवहार।

(b) सकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → जवाबदेहिता, पारदर्शिता, सत्यनिष्ठता, गैर पक्षपातपूर्ण तरीका, सुशासन, सार्वजनिक कार्यों में जनसहभागिता, नागरिक केन्द्रित-शासन, नवाचार, संवेदनशीलता, वस्तुनिष्ठता, लोकनिधि का सदुपयोग, देश की अच्छी छवि का निर्माण, नीतियों एवं योजनाओं का त्वरित, कुशल एवं प्रभावी क्रियान्वयन आदि।

5. धार्मिक क्षेत्र :

(a) नकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → साम्प्रदायिकता, कट्टरता, परस्पर अविश्वास, अंधविश्वास, दंगे, धार्मिक वैमनस्य, नरसंहार।

(b) सकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → धार्मिक सहिष्णुता, धार्मिक सद्भाव, सर्वधर्म समभाव, धार्मिक समरसता आदि।

6. पर्यावरणीय क्षेत्र :

(a) नकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → जीवश्म ईंधनों का दहन, अवैध अंधाधुंध खनन, हिमालयी क्षेत्रों में बड़े बांधों का निर्माण, कंक्रीट के मकानों का अनियोजित निर्माण कार्य, जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, एसिड रेन, ओजोन परत का क्षरण, मैंग्रोव विनाश, प्राकृतिक आपदायें, भूस्खलन, पर्यावरणीय असंतुलन, प्रदूषण, जंगलों में आग आदि। जोशीमठ जैसी समस्यायें।

(b) सकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → सतत् विकास, गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोत, पर्यावरण मित्र तकनीक, नदियों का कायाकल्प (जैसे टेम्स नदी, साबरमती नदी), स्वच्छता अभियान की सफलता।

7. वैज्ञानिक :

(a) नकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → कृत्रिम बुद्धि का दुरूपयोग जैसे खतरनाक रसायन एवं जैव हथियारों का निर्माण आदि, वैज्ञानिक खोजों एवं आविष्कारों का दुरूपयोग

(b) सकारात्मक कार्य → परिणामस्वरूप → कृत्रिम बुद्धि का सदुपयोग → कृत्रिम बुद्धि का शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, कृषि क्षेत्र में उपयोग, वैज्ञानिक खोजों एवं आविष्कारों को मानवता के हित में उपयोग।

21 संविधान की प्रस्तावना
(Preamble of The Constitution)

प्रत्येक पुस्तक के प्रारंभ में एक प्राक्कथन होता है जिसमें पुस्तक की विषय-वस्तु, उसका उद्देश्य और उसका क्षेत्र तथा उपागम आदि का संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है। यह प्राक्कथन पुस्तक का सार होता है जिसे पढ़कर पुस्तक के विषय में प्रारंभिक जानकारी मिल सकती है। ठीक इसी तरह सामान्यतया सभी संविधानों के प्रारंभ में एक प्रस्तावना (उद्देशिका) होती है जिसमें शासन व्यवस्था के मूल आधारों, उसके दर्शन, उसके स्वरूप तथा लक्ष्य आदि का उल्लेख किया जाता है। इसे पढ़कर उस देश की शासन-प्रणाली के स्वरूप, उसके उद्देश्य, उसके कार्य क्षेत्र तथा व्यक्ति और राज्य के संबंधों आदि का ज्ञान हो सकता है। संविधान की प्रस्तावना संविधान का परिचय कराती है। इसे संविधान की आत्मा कहा जाता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में संविधान का सार एवं उसका दर्शन निहित है।

प्रस्तावना की विषय वस्तु (Subject Matter of Preamble)

मूल संविधान की प्रस्तावना 85 शब्दों से निर्मित थी। 1976 में संविधान के 42वें संशोधन द्वारा उनमें 'समाजवादी (Socialist)', 'पंथ-निरपेक्ष' (Secular) और 'अखण्डता' (Integrity) शब्दों को जोड़ दिया गया। इस संशोधन के बाद संविधान की प्रस्तावना का वर्तमान स्वरूप निम्नवत है:-

''हम भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की
एकता और **अखंडता** सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

प्रस्तावना से मुख्यत: चार बातें निकलकर सामने आती हैं:

प्रस्तावना

1. सत्ता का स्रोत → भारत की जनता
2. राज्य का स्वरूप/प्रकृति →
   - संपूर्ण प्रभुत्व-संम्पन्न
   - समाजवादी
   - पंथ निरपेक्ष
   - लोकतंत्रात्मक
   - गणराज्य
3. शासन व्यवस्था के उद्देश्य →
   - न्याय
   - स्वतंत्रता
   - समता
   - एकता व अखण्डता
   - बंधुत्व
4. संविधान लागू होने की तिथि → 26 नवम्बर, 1949

महत्व एवं उद्देश्य :

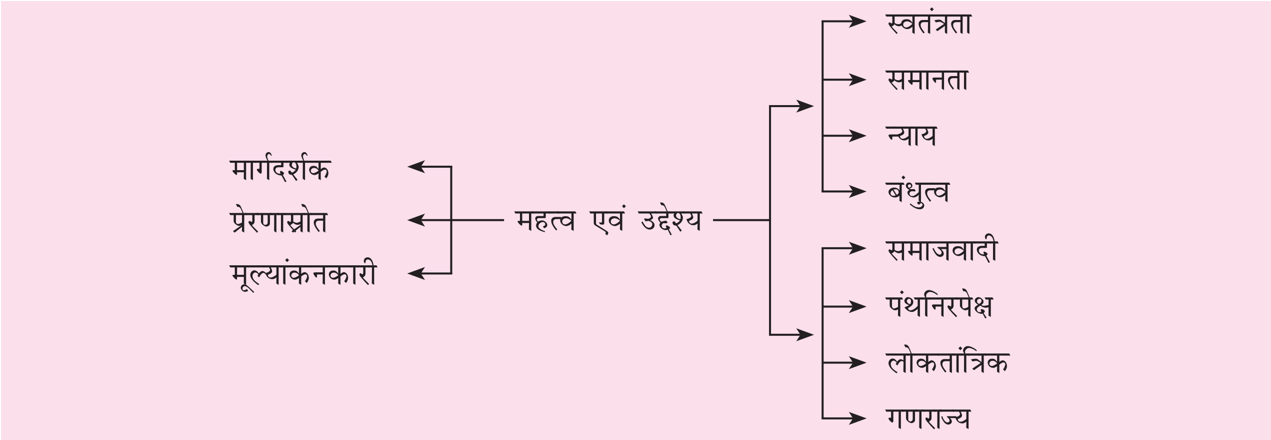

1. **सत्ता का स्त्रोत (Source of power):** संविधान की प्रस्तावना 'हम भारत के लोग' शब्दों से प्रारम्भ होती है जो इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि भारतीय संविधान का स्त्रोत जनता है और राजनैतिक सत्ता अन्तिम रूप से जनता में है जिसका प्रयोग करते हुए जनता ने स्वेच्छा से संविधान का निर्माण अथवा अपनी पसंद की शासन व्यवस्था को स्थापित किया है। प्रस्तावना के अन्तिम भाग में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है। कि (हम भारत के लोग)... इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते है। इससे इस तथ्य का बोध होता है कि संविधान किसी वैदेशिक सत्ता या किसी वर्ग विशेष द्वारा भारतवासियों पर आरोपित नहीं किया गया है वरन् जनता ने स्वंय इसे बनाया है, इसे स्वीकार किया है और स्वयं अपने को दिया है अर्थात् अपने ऊपर लागू किया है। दूसरे शब्दों में जनता शासक भी है और शासित भी।
2. **राज्य का स्वरूप (Nature of the State) :** प्रस्तावना का दूसरा भाग इस बात को निश्चित करता है कि राज्य और सरकार का स्वरूप क्या होगा? इसे बताने के लिए प्रस्तावना में पाँच शब्दों का प्रयोग किया गया है–(i) संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, (ii) समाजवादी, (iii) पंथनिरपेक्ष, (iv) लोकतंत्रात्मक, (v) गणराज्य।

प्रस्तावना में उल्लिखित महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

जन-प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान: संविधान की प्रस्तावना उद्घोष करती है कि "हम भारत के लोग... अपनी इस संविधान सभा में.... इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।" स्पष्ट है कि संविधान का मूल सत्ता-स्रोत भारतीय जनता में निहित है तथा इस संविधान द्वारा निर्मित भारतीय गणराज्य की अंतिम प्रभुसत्ता भी जनता में ही निवास करती है।

जन-प्रभुसत्ता का यह उद्घोष शासन-तंत्र के लोकतांत्रिक विन्यास को सुनिश्चित करता है। इसका महत्व संघवाद के संदर्भ में भी फलितार्थ है। भारत में प्रभुसत्ता संघ या राज्यों में से किसी एक में या इनमें विभाजित नहीं है। यह 'भारत के लोग' में निहित है। अत: संघ या राज्यों में से कोई सर्वोच्चता का दावा नहीं कर सकता; सर्वोच्च हैं–"भारत के लोग और उनके द्वारा लागू किया गया यह संविधान"। संघ एवं राज्य इसी जनतांत्रिक संविधान की सृष्टि के रूप में इसके अंतर्गत कार्यरत हैं।

(i) **संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न (Sovereign)** इस शब्द से इस बात का बोध होता है कि भारत अपने आन्तरिक और बाह्य मामलों में पूरी तरह स्वतंत्र होगा। संविधान प्रभुतासंपन्न व्यक्तियों द्वारा निर्मित प्रभुता-संपन्न राज्य की स्थापना करता है।

(ii) **समाजवादी (Socialist)** शब्द से तात्पर्य यह है कि संविधान ऐसी शासन व्यवस्था को स्थापित करता है जिसमें उत्पादन के साधनों का प्रयोग सामाजिक हित में किया जाएगा और आर्थिक शोषण का अंत करके हर व्यक्ति को जीविकोपार्जन की सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाएंगी। समाजवाद का स्वरूप भले ही कुछ हो इस घोषणा से यह तो स्पष्ट ही कर दिया गया कि भारत एक पूँजीवादी राज्य नहीं होगा जहाँ एक वर्ग दूसरे वर्ग का और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है।

(iii) पंथनिरपेक्ष (Secular) 1976 ई. में 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया है कि भारतीय गणराज्य विशेषत: पंथनिरपेक्ष भी है। दूसरे शब्दों में संविधान धर्मतंत्र का निषेध करता है अर्थात् यहाँ पंथ आधारित/संचालित शासन व्यवस्था की बात नहीं की गई है। वस्तुत: भारतीय गणराज्य के प्रभुसत्ताधारी होने में ही उसका पंथनिरपेक्ष होना भी अंतर्निहित है। भारतीय राज्य की सत्ता का स्रोत किसी धर्माधिकरण की अधीनता में नही है, बल्कि वह स्वयं अपनी प्रभुसत्ता के बल पर कानूनों का प्रतिकार करते हुए अपने क्षेत्रांतर्गत सभी धार्मिक संस्थाओं का नियमन कर सकता है। भारत राज्य कोई धर्मतंत्रवादी या मजहबी (Theocratic) राज्य नहीं है। किंतु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि राज्य धर्मविहीन, धर्मविरोधी या अधार्मिक है। भारतीय संविधान के अंतर्गत नागरिकों के लिए 'धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार' एक मूल अधिकार के रूप में प्रत्याभूत किया गया है तथा धर्म के आधार पर राज्य द्वारा नागरिकों के बीच कोई भेदभाव सर्वथा निषिद्ध किया गया है।

इसके साथ ही पंथनिरपेक्ष राज्य की पश्चिमी अवधारणा को भी ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया गया है, जिसके अनुसार राज्य को धर्म से कोई सरोकार नहीं रखना चाहिए। भारत में राज्य धर्म के प्रति तटस्थ या उदासीन नहीं है। राज्य किसी धार्मिक संस्था को सहायता दे सकता है, उसके प्रबंध में हस्तक्षेप कर सकता है। ऐसा करते हुए वह मूलभूत, मानववादी नैतिकता से संचालित होता है तथा नियमन करते समय विभिन्न धर्मो के बीच भेदभाव नहीं करता है। इस प्रकार भारत में पंथनिरपेक्ष राज्य सभी नागरिकों के 'धार्मिक विश्वास एवं आस्था' की स्वतंत्रता को पूर्णत: सुनिश्चित करता है, किंतु उससे जुड़े 'धार्मिक व्यवहार' को सार्वभौम नैतिकता के संदर्भ में बिना भेदभाव के 'सर्वधर्म समभाव' के आधार पर नियंत्रित करता है। पंथनिरपेक्षता को न्यायपालिका ने S.R.बोम्मई वाद में संविधान के मूल ढांचे का भाग माना है।

(iv) लोकतंत्रात्मक (Democratic) शब्द से केवल सरकार का स्वरूप का ही नहीं वरन् एक विशेष प्रकार की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का भी बोध होता है। लोकतंत्रात्मक शब्द का अभिप्राय यह है कि समानता और स्वतंत्रता के सिद्धान्तों पर आधारित सरकार जनता के द्वारा निर्वाचित और जनता के प्रति उत्तरदायी होगी। विस्तृत अर्थो में इसमें सामाजिक और आर्थिक समानता का भाव छिपा हुआ है।

लोकतंत्र दो प्रकार का होता है- प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में लोग अपनी शक्ति का इस्तेमाल प्रत्यक्ष रूप से करते हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र के चार मुख्य औजार हैं, इनके नाम हैं- परिपृच्छा (Referendum), पहल (Initiative), प्रत्यावर्तन या प्रत्याशी को वापस बुलाना (Recall) तथा जनमत संग्रह (Plebiscibe)। दूसरी ओर अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधि सर्वोच्च शक्ति का इस्तेमाल करते हैं और सरकार चलाते हुए कानूनों का निर्माण करते हैं इस प्रकार के लोकतंत्र को प्रतिनिधि लोकतंत्र भी कहा जाता है यह दो प्रकार का होता है- संसदीय और राष्ट्रपति के अधीन।

लोकतंत्र के लिए यह भी आवश्यक है कि 'खुले समाज' से उठने वाली मांगों का निपटारा जिस शासनतंत्र द्वारा किया जाए, वह जनता का प्रतिनिधित्व करे तथा जनता के ही प्रति अन्तत: उत्तरदायी भी हो। इसे सुनिश्चित करने के लिए भारत में 18 वर्ष और उससे अधिक उम्र के सभी नागरिकों को, बिना भेदभाव के मताधिकार प्राप्त है। चुनावों में राजनीतिक पदों के लिए चुनाव लड़ने के द्वार सभी नागरिकों के लिए खुले हैं। संसद एवं राज्यों के विधानमण्डलों का गठन प्रत्यक्ष या परोक्ष निर्वाचन द्वारा होता है। संघ एवं राज्यों की मंत्रिपरिषदें लोकप्रिय सदनों के प्रति उत्तरदायी हैं।

लोकतंत्र का सर्वोपरि लक्षण यह है कि शासन तंत्र द्वारा सामाजिक समूहों की परस्पर विरोधी मांगों का निपटारा करते हुए जो नीतियां बनाई जाएं, आम सहमति से उन्हें लागू भी किया जाए न कि बल प्रयोग कर। इसे सुनिश्चित करने के लिए संविधानवाद एवं कानून का शासन भारत में सुस्थापित सिद्धांत है। संविधान सर्वोच्च कानून है तथा इसके अनुरूप निर्मित कानूनों द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही शासन का संचालन बिना किसी भेदभाव के किया जाता है। ऐसा होने पर ही असहमति के प्रति सहिष्णुता तथा अल्पमत का आदर जैसे लोकतांत्रिक मूल्य सुरक्षित रह पाते हैं।

(v) गणराज्य (Republic) से तात्पर्य यह है कि राष्ट्र का प्रमुख जनता द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होगा, वह वंशानुगत नहीं हो सकता।

गणराज्य की संकल्पना उस राज्य का प्रतीक है जिसमें राज्य का अध्यक्ष वंशानुगत या मनोनीत न होकर एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित होता है। संविधान लागू होने से पूर्व भारत ब्रिटिश महारानी के सर्वोच्च आधिपत्य को स्वीकार करता था, जो वंशानुगत शासक के रूप में राजतंत्र की प्रतीक थी। किंतु 15 अगस्त, 1947 ई. को 'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम' के लागू होने के साथ ही यह अधिराजत्व समाप्त हो गया तथा 26 जनवरी, 1950 ई. को नया संविधान लागू होने के साथ ही भारत गणराज्य बन गया। संविधान के अनुसार भारत में राज्य का अध्यक्ष राष्ट्रपति है, जो एक बार में 5 वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचित होता है।

संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न गणराज्य

- अपने आंतरिक व बाह्य विषयों पर निर्णय लेने में पूर्ण स्वतंत्र है।
- राष्ट्रमण्डल की सदस्यता स्वेच्छिक व अपनी शर्तों पर है।
- अन्तर्राष्ट्रीय संधि व समझौतों को स्वेच्छा से ग्रहण करना। (बाध्यता नहीं)

- राष्ट्र का प्रमुख निर्वाचित है, वंशानुगत नहीं
- कोई विशिष्ट वर्ग नहीं है।
- जनता सभी पद धारण कर सकती है।
- अंतिम शक्ति गण (जनता) में ही निहित है।

उल्लेखनीय है कि गणराज्य बन जाने के बाद भी भारत 'राष्ट्रमण्डल' का सदस्य बना रहा है; किंतु इससे भारतीय राज्य का गणतंत्रीय स्वरूप प्रभावित नहीं होता। भारत ने यह सदस्यता 'अधीन डोमिनियन' के रूप में नहीं, वरन् 'स्वतंत्र गणराज्य' के रूप मे स्वैच्छिकः ग्रहण की है। इस तथ्य को असंदिग्ध रूप से रेखांकित करने के लिए ही संविधान की प्रस्तावना में भारतीय गणराज्य को 'संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न' भी घोषित किया गया है। प्रभुसत्ता ऐसी सर्वोच्च सत्ता का प्रतीक है, जिस पर किसी आंतरिक या बाह्य सत्ता का कोई नियंत्रण नहीं होता। भारतीय राज्य अपने क्षेत्रान्तर्गत सर्वोच्च सत्ता है। उसे किसी भी विषय पर कानून बनाने की उचित शक्ति प्राप्त है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी भारतीय राज्य स्वतंत्र एवं सार्वभौम है। अन्य राष्ट्रों से संबंध स्थापित करने, किसी संधि या समझौते को स्वीकारने अथवा राष्ट्रमण्डल जैसे किसी अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता ग्रहण करने में भारतीय राज्य स्वेच्छा से निर्णय लेता है, बाध्यता से नहीं।

3. शासन व्यवस्था के उद्देश्य (Objectives of Governance): प्रस्तावना में शासन व्यवस्था के निम्न उद्देश्य बताए गए हैं:-

(i) न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक (Justice, Social, Economic & Political): प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। सामाजिक न्याय का अर्थ यह है कि सभी नागरिकों को उनके धर्म, जाति, वर्ग के आधार पर भेदभाव किए बिना, अपने विकास के समान अवसर उपलब्ध हों और समाज के दुर्बल वर्गों का शोषण न किया जाए।

आर्थिक न्याय से अभिप्राय यह है कि उत्पादन के साधनों का इस तरह वितरण किया जाए कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण न कर सके और उत्पादन के साधनों का सार्वजनिक हित में प्रयोग किया जाए। सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना के लिए राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांतों (अनुच्छेद 38 और 39) में विशेष रूप से निर्देश दिए गए हैं। अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और संरक्षण करके लोक-कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय भविष्य की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे।" सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में कहा है कि उद्देशिका अनुच्छेद 38 के परिप्रेक्ष्य में,

अनुच्छेद 21 में दिए गए जीवन के अधिकार के अन्तर्गत सामाजिक न्याय का भी समावेश होता है, अतः सामाजिक न्याय एक मूल अधिकार है।

नीति-निदेशक सिद्धांतों के अन्तर्गत अनुच्छेद 39 में संपत्ति के न्यायपूर्ण वितरण, उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के हित के लिए प्रयोग, समान कार्य के लिए समान वेतन, स्त्रियों और बच्चों के हितों के संरक्षण आदि के लिए विस्तृत प्रावधान किए गए हैं। यह अनुच्छेद आर्थिक जनतंत्र की स्थापना करता है और इसी कारण इसे मूल अधिकारों पर प्राथमिकता प्रदान की गई है।

राजनैतिक क्षेत्र में सभी नागरिकों की समान भागीदारी के लिए वयस्क मताधिकार दिया गया है और सभी नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे किसी भी राजनैतिक पद के लिए चुनाव लड़ सकते हैं।

(ii) स्वतंत्रता: विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता (Liberty of thought, expression, belief, faith and worship) - उद्देशिका में सभी नागरिकों को विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता देने का आश्वासन दिया गया है। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 19 (1) (क) और अनुच्छेद 25-28 में इन स्वतंत्रताओं को मूल अधिकारों के रूप में मान्यता दी गई है।

(iii) समानता: प्रतिष्ठा और अवसर की (Equality: of Status and Opportunity) - संविधान में दिए गए मूल अधिकारों में नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 14 में कानून के समक्ष समानता और विधियों के समान संरक्षण की व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 15 में धर्म, मूलवंश, जाति आदि के आधार पर विभेद का प्रतिषेध किया गया है। अनुच्छेद 16 में सरकारी नौकरियों में सभी को समान अवसर देने और अनुच्छेद 17 में छूआछूत खत्म करने का प्रावधान किया गया है। कानून की दृष्टि में प्रत्येक नागरिक की हैसियत समान है और किसी को भी एक दूसरे के मुकाबले में कोई विशेषाधिकर प्राप्त नहीं है।

(iv) व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता, अखण्डता तथा बंधुता (Dignity of the individual, unity and integrity of nation and fraternity) : उद्देशिका की इन पंक्तियों में दो प्रमुख लक्ष्य राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता निर्धारित किए गए हैं और उनकी प्राप्ति के लिए दो आदर्शों "व्यक्ति की गरिमा" तथा "बन्धुत्व" का उल्लेख किया गया है। वास्तव में यह चारों अवधारणाएँ एक दूसरे की पूरक हैं।

अखण्डता शब्द संविधान के 42वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया था जो एकता शब्द से भिन्न है। अखण्डता से तात्पर्य है भू-भागीय एकता (Territorial Unity) अर्थात् देश के विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े रहें, वे देश से अलग न होने पाएँ। यह स्मरणीय है कि अतीत में भारतीय संघ के कुछ राज्यों में संघ से अलग होकर पृथक प्रभुतासंपन्न राज्य बनाने की माँग उठायी जा चुकी है। इसलिए मूल अधिकारों के अन्तर्गत राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों को रोकने का प्रावधान किया गया है। साथ ही मूल कर्त्तव्यों वाले भाग में भी यह कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह "भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाये रखे।" संक्षेप में, अखण्डता का अर्थ है कि देश भौगोलिक दृष्टि से अटूट रहे, विखंडित न हो।

एकता शब्द का साधारण अर्थ यह है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले विभिन्न धर्मों और जातियों के लोग आपस में मिल-जुल कर रहें। इस प्रकार एकता उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक को अधिकार और सुविधाएँ समान रूप से और सम्मानपूर्वक दी जाएँ तथा किसी व्यक्ति के स्वाभिमान और गरिमा को ठेस न पहुँचने पाए। हर व्यक्ति को यह महसूस हो कि वह इस प्रभुता-संपन्न राज्य की एक अभिन्न इकाई है।

'व्यक्ति की गरिमा' शब्द के अन्तर्गत व्यक्ति की प्रधानता का विचार निहित है और यह सर्वाधिकारी राज्य का निषेध करता है। इसके अनुसार राज्य व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति राज्य के लिए नहीं अर्थात् व्यक्ति साध्य है और वह राज्य के हित

का साधन नहीं है। अतः राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति का आदर करे और ऐसी परिस्थितियों का सृजन करे जिसमें हर व्यक्ति स्वतंत्रापूर्वक अपना विकास कर सके।

यदि सभी व्यक्ति एक दूसरे का परस्पर आदर करेंगे तो स्वाभाविक रूप से उनमें बंधुत्व की भावना उत्पन्न होगी। यहाँ **बंधुता** की भावना भ्रातृत्व या भाई-चारे को इंगित करती है। इसका आशय है कि एक ही मातृभूमि के पुत्र होने के कारण सभी नागरिक भाई-भाई हैं जिन्हें सुख और दुःख में एक-दूसरे का साथ निभाना चाहिए तथा परस्पर स्नेह, साहचर्य एवं सहयोग की भावना के साथ रहना चाहिए। सबकी प्रतिष्ठा और गरिमा का आदर होना चाहिए। यह भावना कि हम सब एक ही राष्ट्र के अंग हैं, पूरे देश को एकता के सूत्र में बाँध देगा।

बंधुत्व की भावना को बढ़ावा देने या साकारित करने के अनेक उपाय किये गए हैं। जैसे :-

1. एक ही नागरिकता दी गई है, राज्यों की अलग-अलग नागरिकता नहीं है।
2. स्वतंत्रता के मूल अधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को देश के किसी भाग में आने-जाने, निवास करने अथवा बसने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है।
3. उपाधियों का अंत (अनुच्छेद 18), अस्पृश्यता-निवारण (अनुच्छेद 17) और भारतीय समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करके इस भावना को मूर्त रूप देने का प्रयास किया गया है।
4. इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए मूल कर्त्तव्यों में यह कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह "भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो......।

बंधुत्व की इस भावना को साकारित करने के लिए समाज के कमजोर वर्गों एवं अक्षम लोगों के प्रति सहानुभूति, सहिष्णुता तथा संवेदना का भाव होना आवश्यक है। गांधी द्वारा स्वीकृत अंत्योदय की अवधारणा में भी समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति के भी उदय की बात निहित है जो उनके सर्वोदयी आदर्श में सम्मिलित है।

प्रस्तावना (उद्देशिका) का महत्व (Importance of Preamble)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना को संविधान की आत्मा कहा गया है। संविधान-निर्मात्री सभा के एक सदस्य के० एम० मुंशी ने प्रस्तावना को "संविधान की राजनीतिक कुण्डली" कहा था जिसका अर्थ यह है कि संविधान की वास्तविकताएँ और उसकी मूल विशेषताएँ एवं दर्शन प्रस्तावना में परिलक्षित होता है। संविधान की प्रस्तावना संविधान की व्याख्या का आधार प्रस्तुत करती है। यह संविधान का दर्पण है जिसमें पूरे संविधान की तस्वीर दिखाई देती है, यह संविधान का चेहरा है जिससे संविधान की पहचान होती है।

1. प्रस्तावना संविधान के मुख्य आदर्शों, आकांक्षाओं, उद्देश्यों एवं नीतियों को समझने में सहायक है। यह उन समस्त सिद्धांतों एवं आदर्शों का उल्लेख करती है जो हमारे संविधान की आधारशिला है।
2. संविधान-निर्माताओं के विचारों को जानने की कुंजी है।
3. यदि संविधान के किसी अनुच्छेद या उपबंध की भाषा अस्पष्ट या संदिग्ध हो तो फिर उसकी व्याख्या करने के लिए प्रस्तावना का आश्रय लिया जा सकता है।

22 मूल कर्त्तव्यों की सूची (List of Fundamental Duties)

अनुच्छेद 51क (51A) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वहः

1. संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।
2. स्वंतत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

3. भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाये रखे।
4. देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करें जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग आधारित सभी भेदभाव से परे हों, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हों।
6. हमारी सामासिक संस्कृति (Composite Culture) की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उनका परिरक्षण करे।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव भी हैं, रक्षा करे और उनका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाईयों को छू ले।
11. 6 से 14 वर्ष की उम्र के बच्चों के माता-पिता या संरक्षक का कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करे। **यह कर्त्तव्य 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा जोड़ा गया।**

मूल कर्त्तव्यों का उद्देश्य एवं महत्त्व (Objectives and Importance of Fundamental Duties)

1. संविधान के मूल कर्त्तव्यों का समावेश करने का मुख्य उद्देश्य नगारिकों को उनके सामाजिक और आर्थिक दायित्वों के प्रति सचेत करना तथा उन्हें अपने देश, साथी नागरिकों और अपने हित में कुछ करने या न करने की नैतिक चेतावनी देना है।
2. मूल कर्त्तव्य राष्ट्र विरोधी एवं समाज विरोधी गतिविधियों जैसे- राष्ट्र ध्वज को जलाने, सार्वजनिक संपत्ति को नष्ट करने, स्त्री विरोधी कुरीतियों के खिलाफ चेतावनी के रूप में कार्य करते हैं।
3. मूल कर्त्तव्य नागरिकों के लिए प्रेरणा स्रोत एवं मार्गदर्शन का काम करते हैं। ये नागरिकों को इस बात की जानकारी देते हैं कि उनका देश और समाज के प्रति क्या कर्त्तव्य है तथा देश के संबंध में उन्हें किस प्रकार की भूमिका निभानी है।
4. ये नागरिकों में अनुशासन एवं सद्‌भाव की भावना बढ़ाते हैं और उन्हें बताते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। ये एक रूप में नागरिकों के लिए नीति संहिता हैं।
5. मूल कर्त्तव्य, अदालतों को किसी विधि की संवैधानिक वैधता एवं उनके परीक्षण के संबंध में सहायता करते हैं। संविधान की व्याख्या करने के क्रम में इनका उपयोग किया जा सकता है।
6. मूल कर्त्तव्यों के संदर्भ में गाँधी का यह कथन उल्लेखनीय है कि- "अधिकार का स्रोत कर्त्तव्य हैं। यदि हम सब अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो अधिकारों को खोजने हमें दूर नहीं जाना पड़ेगा। यदि अपने कर्त्तव्यों को पूरा किये बगैर हम अधिकारों के पीछे भागेंगे तो वह छलावे की तरह हमसे दूर रहेंगे, जितना हम उनका पीछा करेंगे, वह उतनी ही और दूर उड़ते जायेंगे। जिन अधिकारों के हम पात्र होना चाहते हैं तथा जिन्हें हम सुरक्षित करना चाहते हैं, वे सभी अच्छी तरह निभाए गए कर्त्तव्यों से प्राप्त होते हैं।"

23 नोबेल पुरस्कार विजेताओं की कविताएँ (Poems of Nobel Prize Winner)

नोबेल पुरस्कार विजेता ब्राजीली कवियत्री मार्था मेरिडोस की कविता **"You Start Dying Slowly"** का हिन्दी अनुवाद

1. आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं, अगर आप:
करते नहीं कोई यात्रा,
पढ़ते नहीं कोई किताब,
सुनते नहीं जीवन की ध्वनियाँ,
करते नहीं किसी की तारीफ़।
2. आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं, जब आप:
मार डालते हैं अपना स्वाभिमान,
नहीं करने देते मदद अपनी और न ही करते हैं मदद दूसरों की।
3. आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं, अगर आप:
बन जाते हैं गुलाम अपनी आदतों के,
चलते हैं रोज़ उन्हीं रोज़ वाले रास्तों पे,
नहीं बदलते हैं अपना दैनिक नियम व्यवहार,
नहीं पहनते हैं अलग-अलग रंग, या
आप नहीं बात करते उनसे जो हैं अजनबी अनजान।
4. आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं, अगर आप:
नहीं महसूस करना चाहते आवेगों को, और उनसे जुड़ी अशांत भावनाओं को, वे जिनसे नम होती हों आपकी आँखें, और करती हों तेज़ आपकी धड़कनों को।
5. आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं, अगर आप:
नहीं बदल सकते हों अपनी ज़िन्दगी को, जब हों आप असंतुष्ट अपने काम और परिणाम से,
अग़र आप अनिश्चित के लिए नहीं छोड़ सकते हों निश्चित को,
अगर आप नहीं करते हों पीछा किसी स्वप्न का,
अगर आप नहीं देते हों इजाज़त खुद को, अपने जीवन में कम से कम एक बार, किसी समझदार सलाह से दूर भाग जाने की..।
तब आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं..!!
इसी कविता के लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

24 प्रकृति, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, आपदायें, प्रदूषण से संबंधित महत्वपूर्ण कथन एवं सूक्तियाँ

- ''प्रकृति कभी अपनी दी हुई वस्तुओं का अंहकार नहीं करती परन्तु दुरूपयोग करने पर सबक अवश्य सिखाती है।''
- "ईश्वर ने पेड़-पौधों का पालन-पोषण किया, उन्हें बाढ़, सूखा, बर्फीले तूफानों, बीमारियों, हजारों आंधियों से बचाया लेकिन मूर्खों द्वारा उन्हें नष्ट करने से नहीं बचा सका।'' *-जॉन मूर*

- हम पहली पीढ़ी हैं, जिसके पास प्रकृति के मूल्य और उस पर हमारे प्रभाव की एक स्पष्ट तस्वीर है। हम अंतिम भी हो सकते हैं, यदि हम इस प्रवृत्ति को पलटने के लिए कार्रवाई करते हैं। *2018 की WWF लिविंग प्लैनेट रिपोर्ट*
- "मानव सभ्यता का भविष्य या तो हरा होगा या तो होगा ही नहीं।" *-बॉब ब्राउन*
- "प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति की जरूरतों को पूरा तो कर सकती है लेकिन उसके लालच को नहीं।" *-महात्मा गांधी*
- "हम सब यह प्रयास करें कि जब हम यह धरती छोड़ें तो यह उस दिन से बहुत अच्छी हो जब हम यहाँ आए थे।" *- सिडनी शेल्डन*
- "अगर हम पर्यावरण की गुणवत्ता सुधारना चाहते हैं तो एकमात्र रास्ता है कि हर व्यक्ति को इस मुहिम से जोड़ा जाये।" *- रिचर्ड रोजर्स*
- प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में मनुष्यों को अपने जीवनकाल में तीन ऋणों (देव ऋण, ऋषि ऋण एवं पितृ ऋण) से मुक्त होने की बात की गयी है। परन्तु वर्तमान बदलती परिस्थितियों एवं पर्यावरण को लेकर उभरती नयी चुनौतियों को लेकर एक नये ऋण को भी इसमें जोड़ने के जरूरत है, और वह है- प्रकृति ऋण। प्रकृति के प्रांगण में में ही हम पलते, बढ़ते एवं सीखते हैं। प्रकृति हमारे जीवन एवं अस्तित्व का आधार है।

पर्यावरणीय नैतिकता हमारी पर्यावरणीय चेतना को जागृत कर पर्यावरण के प्रति हमारे कर्त्तव्यों का बोध कराती है। हम जिसकी मदद से जीवन में अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, शांति और आनन्द प्राप्त करते हैं, जो हमारे अस्तित्व का आधार है, उसकी रक्षा एवं संवर्द्धन आवश्यक है।

प्रकृति हमें परोपकार एवं विनम्रता का संदेश देती है। जो वृक्ष फलों से लद जाता है वह झुक जाता है। यही बात वास्तविक ज्ञानी एवं सज्जन व्यक्ति में भी दिखायी देती है।

- आज इस बात की आवश्यकता है कि प्रकृति, समाज और विकास की अंत:क्रिया के पर्यावरणीय प्रभाव से आम लोगों के साथ-साथ, राजनीतिज्ञों, नेतृत्वकर्त्ताओं एवं प्रशासकों को अवगत कराया जाए और उन्हें इस संदर्भ में सजग एवं संवदेनशील बनाया जाए, *जिसमें वे निवास कर रहें हैं और उनकी भावी पीढ़ी जिसमें निवास करेगी।*

आर्थिक विकास के पक्ष में तर्क:

- आर्थिक विकास ही जनता को निर्धनता से बाहर लाने का एकमात्र तरीका है।
- औद्योगिक रूप से विकसित राष्ट्र, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके और पृथ्वी को प्रदूषित करके संपन्न बन गए हैं। उन्हें अब उसी तरह से विकास करना चाहिए। उन्होंने पर्यावरण संकट उत्पन्न किया और समस्या का समाधान भी उन्हें ही करना चाहिये।

पर्यावरण संरक्षण के पक्ष में तर्क:

- यदि पर्यावरण क्षरण जीवन को कठिन या असंभव बना देता है तो आर्थिक विकास का कोई लाभ नहीं है।
- विश्व के निर्धन देश पर्यावरण क्षरण के प्रतिकूल प्रभावों के प्रति अधिक असुरक्षित है।

आपदा : *संयुक्त राष्ट्र (United Nations) के अनुसार, आपदाएँ बड़े पैमाने पर अचानक होने वाली ऐसी प्राकृतिक या मानवीकृत गतिविधियाँ है, जिनका मानव-जाति तथा पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।*

जैसे- बाढ़, भूकम्प, सूखा, भूस्खलन, जहरीली गैसों का रिसाव (भोपाल गैस काण्ड आदि), नाभिकीय विस्फोट आदि

- वैश्विक स्तर पर आपदाओं की आवृत्ति (frequency) एवं तीव्रता में वृद्धि हो रही है। विश्व में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आपदा से प्रभावित लोगों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका सबसे बड़ा कारण वैश्विक स्तर पर बढ़

रहा पर्यावरणीय असंतुलन है। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि से प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ा है और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन एवं संग्रहण करने की भौतिकतावादी प्रवृत्ति ने इसकी व्यापकता और प्रभाव को और बढ़ा दिया है। इसकी मार विकासशील देशों के साथ विकसित देशों पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

'पर्यावरण संरक्षित तो जीवन संरक्षित' – यह उक्ति मात्र एक कहावत नहीं है, बल्कि स्वस्थ मानवीय जीवन हेतु निर्विवाद रूप से सत्य है। यद्यपि मानव प्राकृतिक प्रक्रिया में शताब्दियों से हस्तक्षेप कर रहा है परन्तु औद्योगिक क्रांति के पश्चात् प्रकृति में मानवीय हस्तक्षेप की गति एवं मात्रा में चिन्ताजनक सीमा तक वृद्धि हुई। पिछले कुछ दशकों से विकास की प्रकृति, मानवीय क्रियाकलाप और पर्यावरण पर इसका प्रभाव सार्वजनिक चिन्ता एवं चर्चा का विषय बना हुआ है।

जैविक (Organic) एवं अजैविक (Inorganic) वातावरण के साथ जीवों की अन्तःक्रियाओं (Interactions) एवं अन्तर्सबंधों (Inter relations) के अध्ययन को पारिस्थितिकी (Ecology) कहा जाता है। यह एक गत्यात्मक (Dynamic) अवधारणा है जिसमें जीवों एवं पर्यावरण के मध्य आदान-प्रदान चलता रहता है। मानव जाति इस जटिल एवं अंतर्सबंधित प्राकृतिक विश्व का एक भाग है।

मानववाद जहाँ मानव की केन्द्रियता और प्रमुखता पर बल देता है, वहीं पारिस्थितिकीवाद पारिस्थितिकी को प्रमुखता प्रदान करता है। पारिस्थितिकी मानववाद में दोनों के समन्वय एवं संतुलन की स्थिति को स्वीकार किया जाता है। पारिस्थितिकी मानववाद पर्यावरण की सुरक्षा एवं संवर्द्धन के साथ-साथ मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। इस रूप में यह सतत् विकास की अवधारणा का समर्थन करता है।

वस्तुतः मानव-प्रकृति संबंध के संदर्भ में दो स्पष्ट प्रवृतियों को पहचाना जा सकता है-

(i) **मानव केन्द्रित** (Anthropocentric) (ii) **प्रकृति केन्द्रित** (Eco-centric)

(i) पहली शाखा मानव केन्द्रित है। इनके अनुसार केवल मनुष्य में ही आन्तरिक मूल्य हैं, जबकि प्रकृति में उपयोगिता मूल्य है। इनके अनुसार प्रकृति में जो भी मूल्यवान या महत्वपूर्ण है, उसका एकमात्र मानदण्ड मानव है। यह समस्त संसार व्यक्ति के लिए है और समाज में मानव न केवल सभी मूल्यों का स्रोत है, बल्कि उसका मानदण्ड भी है। प्रकृति की महत्ता एवं मूल्यपूर्णता भी मानव के ही संदर्भ में है। मानववाद इसका समर्थन करता है।

(ii) मानव-प्रकृति संबंध के संदर्भ में दूसरी शाखा जीव केन्द्रित है। इस शाखा के विचारक व्यक्ति की बजाय सम्पूर्ण प्रकृति को महत्व एवं प्राथमिकता देते हैं। यह एक 'प्रकृति केन्द्रित' अवधारणा है, जिसमें व्यक्ति के ऊपर प्रकृति को वरीयता दी जाती है। पारिस्थितिकीवाद इसका समर्थन करता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना के दो मूल घटक हैं –

(i) जैविक घटक (Organic unit) – मनुष्य, पशु, पक्षी, पौधा

(ii) अजैविक घटक (Inorganic unit) – खनिज संपदा, वायु, जल आदि

इन जैविक एवं अजैविक घटकों में मानव की भूमिका केन्द्रीय एवं सर्वोच्च है। मानव पारिस्थितिकी तंत्र की खाद्य श्रृंखला में सर्वोच्च स्तर पर है। वह अपने अस्तित्व तथा आजीविका हेतु अन्य जैविक घटकों के साथ-साथ अजैविक घटकों का भी प्रयोग करता है। उसके इन क्रियाकलापों से न केवल अन्य जैविक घटक एवं भौतिक पर्यावरण नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रहा है बल्कि स्वयं मानव का अस्तित्व भी संदेह के घेरे में आ गया है। धरती के रक्षा कवच ओजोन से लेकर अनेक पशु-पक्षी, पेड़-पौधे मानव की उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते दुष्प्रभाव से संकटापन्न स्थिति में आ गए हैं। मानवीय गतिविधियों के कारण उत्पन्न समस्याएँ जैसे – ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन क्षय, अम्लीय वर्षा, जनसंख्या का तीव्र विकास, भौतिक संपदा का अंधाधुंध शोषण, नाभकीय शस्त्रों का परीक्षण एवं विकास, बाढ़, सूखा, जंगलों में आग इत्यादि ने मानव के दीर्घकालीन अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है।

भारतीय संदर्भ

भारतीय संदर्भ में प्रारंभ से ही मानव और प्रकृति के मध्य निकट संबंध रहा है। इसका आधार प्रधानतः धार्मिक मान्यताएँ थीं। विश्व के प्राचीनतम दार्शनिक वाङ्मय वेदों में अनेक रूपों में विविध प्राकृतिक तत्वों को दैवीय रूप में निरूपण किया गया है। यथा यहाँ पृथ्वी, अग्नि, वरुण, उषा, मित्र आदि प्राकृतिक तत्वों को दैवीय स्वरूप प्रदान किया गया है। उदाहरणस्वरूप- पर्वत पूजा, नदी पूजा, वृक्ष पूजा, पशु पूजा इत्यादि का विधान रहा है। यहाँ पशु-पक्षियों को देवी-देवताओं के वाहन के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ पंचमहायज्ञ की भी कल्पना है जिसमें एक भूत पक्ष की भी कल्पना है जिसमें विभिन्न जीव-जन्तुओं के साथ वृक्षों को भी अन्न समर्पित किया जाता है। विशिष्टाद्वैत में तो संपूर्ण प्रकृति को ही ईश्वरीय अंश के रूप में स्वीकार किया गया है।

मनुष्य और प्रकृति में किसका अधिक महत्व है। इस संदर्भ में तीन मत हैं-

(i) निश्चयवाद (Determinism) (ii) संभावनावाद (Possibilism)

(iii) नव निश्चयवाद (New Determinism)

(i) **निश्चयवाद :** इसमें प्रकृति को शक्तिमान तथा नियंत्रक माना जाता है। प्रकृति ही मानव के क्रियाकलाप एवं व्यवहार का निर्धारण करती है। यहाँ *मनुष्यों को प्रकृति के दास के रूप में स्वीकार* किया गया है। डार्विन ने अपनी पुस्तक 'Origin of Species' में मानव एवं अन्य जीवधारियों के ऊपर पर्यावरण के प्रभाव को रेखांकित किया है।

(ii) **संभावनावाद :** इसके अनुसार मनुष्य प्रकृति द्वारा उपलब्ध कराई गई संभावनाओं में से चयन करने में स्वतंत्र है। इसमें मानव को सर्वोच्चता प्रदान की गई है। यहाँ *मनुष्य प्रकृति का दास नहीं अपितु स्वामी है।*

(iii) **नवनिश्चयवाद :** यह एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण है। इसमें यह माना जाता है कि मनुष्य एवं प्रकृति एक-दूसरे को प्रभावित एवं नियमित करते हैं। दोनों परस्पर सहयोगी हैं।

(2) प्रयोजन के दृष्टिकोण से

मानव-प्रकृति संबंध को प्रयोजन के दृष्टिकोण से दो रूपों में देखा जा सकता है-

(i) भोगार्थ (Consumption) (ii) रक्षार्थ (Protection)

(i) **भोगार्थ :** मनुष्य जैविक एवं अजैविक घटकों में श्रेष्ठ है। यदि मनुष्य अन्य जैविक एवं अजैविक घटकों का उपयोग अपने हित में करता है तो यह उचित है। बाइबिल इसका समर्थन करता है। प्रकृति का अंधाधुंध शोषण इसी का परिणाम है।

परन्तु विभिन्न पर्यावरण आंदोलन के चिन्तकों ने इस अवधारणा का खण्डन किया है। इनके अनुसार प्रकृति वास्तव में हमारे जीवन का आधार है। इनका यह मानना है कि सीमित स्रोतों वाले इस संसार में असीमित विकास नहीं हो सकता। तीव्र औद्योगिकीकरण और सतत् विकास परस्पर विरोधी हैं। तीव्र औद्योगिक विकास ने पर्यावरण और मानवीय जीवन की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। यही कारण है कि पर्यावरणवादी विकास के वैकल्पिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करते हैं।

(ii) **रक्षार्थ :** इसके अनुसार प्रकृति केवल उपभोग की सामग्री नहीं है अपितु हमारे अस्तित्व का आधार भी है। प्रकृति के आश्रय में ही हमारा विकास हुआ है। यदि आश्रय नष्ट होगा तो इस प्रभाव में मनुष्य भी अछूता नहीं रह पाएगा। भारतीय परम्परा इसका समर्थन करती है।

प्राकृतिक असंतुलन को दूर करने के उपाय

- जनसंख्या के तीव्र वृद्धि पर नियंत्रण
- जैव संसाधनों का संरक्षण
- सतत् विकास (मूल्य आधारित विकास)

- पर्यावरण मित्र तकनीक
- सर्वोदय एवं 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना पर बल दिया जाए।
- मौलिक कर्तव्यों का अनुपालन हो। यहाँ 51(क) में यह कहा गया है कि- प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी तथा अन्य वन्य जीव हैं, उनकी रक्षा तथा संवर्धन करें तथा प्राणी मात्र के लिए दया रखें।
- वन क्षेत्र 33% होना चाहिए।
- वैश्विक सामूहिक प्रयास होना चाहिए।
- भौतिक विकास को नैतिकता से जोड़ा जाए।
- प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग चयनात्मक एवं संयमित हो।
- प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव हो।
- पर्यावरणीय चेतना पैदा की जाए। लोगों को पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं और उन पर आए खतरों के प्रति उन्हें सचेत किया जाए।
- भौतिकतावादी समाज के उस आदर्श का परित्याग हो जिसमें सफलता का निरूपण उपभोग वस्तु की संख्या के आधार पर निर्धारित होता है।
- प्रदूषणरहित गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा दिया जाए।
- पर्यावरण का न केवल उपयोगिता मूल्य है बल्कि उनका आंतरिक मूल्य भी है।

पर्यावरण को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जाता है। 1. प्राकृतिक पर्यावरण 2. मानव निर्मित पर्यावरण

प्राकृतिक पर्यावरण में जैविक एवं अजैविक दोनों घटकों को सम्मिलित किया जाता है। क्योंकि ये सभी प्राकृतिक रूप से विकसित हुए हैं। मानव एक ऐसे वातावरण में रहता है जहाँ वह जैविक एवं अजैविक कारकों से प्रभावित होता है और अपने कार्यों से इन्हें प्रभावित भी करता है। मिट्टी, हवा, पानी, वृक्ष, वन आदि प्राकृतिक पर्यावरण के घटक हैं। मानव निर्मित पर्यावरण में वे सभी वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं जिनका निर्माण वह अपने उपयोग के लिए करता है। जैसे मकान, सड़क, स्कूल, अस्पताल, रेलवे लाइन, पुल, पार्क, बाँध आदि सभी मानव-निर्मित पर्यावरण के घटक हैं। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण की मदद से ही मानव-निर्मित पर्यावरण को विकसित करता है।

पर्यावरण के ये दोनों घटक गतिशील हैं।

पर्यावरण के क्षरण का दुष्परिणाम है कि वैश्विक तापन, जलवायु परिवर्तन, आसन्न जलसंकट, कृषि भूमि की घटती उर्वरता, स्वास्थ्य संबधी समस्यायें बढ़ रही हैं। पर्यावरणीय क्षरण के मुख्य कारण हैं-

1. सामाजिक कारक : गरीबी, नगरीकरण, जीवनशैली में परिवर्तन, रेफ्रिजरेटर और एयर कंडीशनर जैसे आधुनिक उपकरण जिनसे कार्बन डाई ऑक्साईड और कार्बन मोनो ऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसों का रिसाव होता है।

2. आर्थिक कारक : औद्योगिकीकरण, अधिक उत्पादन के लिए उर्वरकों एवं कीटनाशकों का व्यापक प्रयोग।

वनों की कटाई, खनन गतिविधियां, औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ एवं कचरे का ठीक से निस्तारण नहीं, तेल रिसाव, बड़े बांधों एव जलाशयों का निर्माण, रेडियोएक्टिव कचरे, शहरी कचरे, उर्वरकों एवं कीटनाशकों का व्यापक उपयोग हानिकारक गैसों का उत्सर्जन, उपभोक्तावादी संस्कृति, अवैध खनन, जीवाश्म ईंधनों का दहन आदि।

- *''कहीं से कुछ, कहीं से कुछ, कहीं से कुछ उठातें हैं,*
  परिन्दे तब कहीं छोटा सा अपना घर बनाते है।'' **- कुमार मनोज**

- *"धूप का जंगल, नंगे पाँबो, इक बंजारा करता क्या,*
रेत का दरिया, रेत के झरने प्यास का मारा करता क्या
बादल बादल आग लगी थी, छाया तरसे छाया को,
पत्ता पत्ता सूख चूका था पेड़ बेचारा करता क्या।" **– अंसार काम्बरी**

- *"किस रूत के मुंतजिर हैं ये पेड़ रास्तो पर,*
खुद धूप में खडे हैं छाया मुसाफिरों पर।" **–शहजाद अहमद**

- *"जो घर बनाओ तो इक पेड़ भी लगा लेना,*
परिन्दे सारे मुहल्ले में चहचहाएंगे।" **– डॉ. के.के ऋषि**

"प्रकृति के प्रागंण में रहिये, प्रकृति को पढ़ियें एवं सीखिए और उससे प्रेम कीजिए। आप स्वस्थ रहेगें, आप कभी निराश नहीं होगें।

25 गरीबी से संबंधित महत्वपूर्ण कथन एवं सूक्तियाँ

- *"घर में ठण्ड़े चूल्हे पर अगर खाली पतीली है,*
बताओं कैसे लिख दूँ धूप फागुन की नशीली है।" **–अदम गोण्डवी**

- *"इस नदी की धार से ठंडी हवा आती तो है,*
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।
एक चिनगारी कहीं से ढूंढ लाओ दोस्तों,
इस दिये में तेल से भीगी हुई बाती तो है।" **– दुष्यंत कुमार**

- *"आँख पर पट्टी रहे और अक्ल पर ताला रहे,*
अपने शाहेवक्त का यूँ मर्तबा आला रहे।
एक जनसेवक को दुनिया में अदम क्या चाहिये,
चार छह चमचे रहें, माइक रहे, माला रहे।" **– अदम गोण्डवी**

- *"हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिये,*
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिये।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिये।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिये।" **– दुष्यंत कुमार**

26 समाज एवं सामाजिक व्यवस्था से संबंधित महत्वपूर्ण कथन एवं सूक्तियाँ

- "केवल मनुष्य के पास ही ऐसी शक्ति है, जिससे वह अपने विचारों को वास्तविकता में बदल सकता है। केवल मनुष्य ही सोच सकता है, स्वप्न देख सकता है और अपने स्वप्न को साकार कर सकता है।" ***–नेपोलियन हिल***

- "जितना हम अध्ययन करते हैं, उतना ही हमें अपने अज्ञान का आभास होता जाता है।" **– सुकरात**
- "जब आप कोई निर्णय ले लेते हैं तो संपूर्ण ब्रह्माण्ड उसे सच करने की कोशिश करता है।" **–पॉउलो कोएल्हो**
- "छोटा लक्ष्य अपराध होता है।" **–ए.पी.जे. अब्दुल कलाम**
- "वे कहते हैं कि समय के साथ सब बदल जाता है, लेकिन वास्तव में आपको ही उन्हें बदलना होता है।" **– एंडी वारहोल**
- *"जीवन लम्बा होने की बजाय महान होना चाहिये।"* **– डॉ. अम्बेडकर**
- *"चाहे बरसे जेठ अंगारे, या पतझर हर फूल उतारे।*
  अगर हवा में प्यार घुला है, हर मौसम सुख का मौसम है।" **– गोपालदास नीरज**
- *"कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नही मिलता,*
  कहीं ज़मीं तो कहीं आसमाँ नहीं मिलता।" **–निदा फाज़ली**
- *"मंजिलें ख्वाब बनकर, रह जाएँ,*
  इतना बिस्तर से प्यार मत करना। **– निदा फाज़ली**
- *"न हम-सफर न किसी हम-नशी से निकलेगा,*
  हमारे पाँव का काँटा हमी से निकलेगा।" **–राहत इंदोरी**

28 सत्य से संबंधित महत्वपूर्ण कथन एवं सूक्तियाँ

- *"सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।*
  जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप।"

अर्थात् सच्चाई के समान कोई तपस्या नहीं है, झूठ (मिथ्या आचरण) के समान कोई पाप कर्म नहीं है। जिसके हृदय में सच्चाई है उसी के हृदय में भगवान निवास करते हैं। **– कबीर**

- सत्य आडम्बर रहित, अकृत्रिम, पूर्ण एवं अकाट्य होता है। यह नित्य एवं शाश्वत होता है।
- *"सत्य बाहर खोजने की चीज नहीं है, यह तो हम अंदर से महसूस करते है।"*
- *"तीन चीजे लम्बें समय तक छिपाई नहीं जा सकती-सूर्य, चंद्रमा और सत्य।"*
- *'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात सत्यं अप्रियं।"* **–छांदोग्य उपनिषद**

हमें सत्य बोलना चाहिये और प्रिय बोलना चाहिये । कभी भी अप्रिय लगने वाला सत्य नहीं बोलना चाहिये।

- *"कभी-कभी यूँ भी हमने अपने जी को बहलाया है।*
  जिन बातों को खुद न समझे, औरों को समझाया है।" **– निदा फाज़ली**
- *सच घटे या बढ़े तो सच न रहे*
  झूठ की कोई इंतिहा ही नहीं **– कृष्ण बिहारी नूर**

- **सच्चाई**

जहाँ दिलों में सच्चाई हो
वहाँ चरित्र में सुंदरता होती है।
जब चरित्र में सुंदरता हो,
तब घर में सद्भाव होता है।
जब घर में सद्भाव होता है।
तब राष्ट्र में व्यवस्था रहती है।
जब राष्ट्र में व्यवस्था रहती है,
तब विश्व में शांति होती है।

30 संकल्प शक्ति, जीवटता, परिश्रम

- *न पूछो मेरी मंजिल कहां है, अभी तो सफर का इरादा किया है।*
  ना हारूंगा हौसला उम्र भर, ये मैने किसी से नहीं, खुद से वादा किया है।।

- *'हम तुम यदि संकल्प करें,*
  तो काया-कल्प धरा का कर देंगे।
  भूतल नन्दन-वन बन जाएगा।
  हो जाएँ, यदि हम सब तत्पर।'

31 जल-संरक्षण (Water-Conservation)

- जल जीवन के लिए अनमोल है। अब ऐसे नारे कई जगहों पर दिखाई देते हैं कि- "जल है तो कल है" जल संकट का समाधान जल के संरक्षण से ही संभव है, जल के संरक्षण के लिए जन-भागीदारी आवश्यक है। इसके लिए हम सबको मिल-जुलकर सतत् प्रयास करना होगा।
- जल-जीवन मिशन (JJM) कार्यक्रम के तहत मार्च, 2024 तक हर घर जल कनेक्शन के माध्यम से पेयजल आपूर्ति का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
- वॉटर ट्रेन
- हमारे देश में प्रतिवर्ष भू-सतह पर गिरने वाले 4000 घन किलोमीटर जल का आधे से दो तिहाई हिस्सा बेकार बह जाता है। दूसरी तरफ तेजी से बढ़ती जनसंख्या के लिये भूजल का अन्धाधुन्ध दोहन तथा पक्के मकानों, फर्शों व पक्की सड़कों के रूप में फैलता कंक्रीट का जंगल भूजल भण्डार के लिये खतरे का संकेत दे रहा है। भूजल के अत्यधिक दोहन से उत्पन्न हुए गम्भीर संकट का मुकाबला करने के लिये देश के कई भागों में वर्षा के पानी के संग्रह की योजना तैयार की गई है। इसके तहत वर्षाकाल में भवनों की छतों से बहने वाले पानी को संग्रहित करने की योजना लागू की जा रही है। वस्तुतः छत (रूफटॉफ) से वर्षा जल संग्रहण तकनीक गिरते भूजल को बढ़ाने को कारगर कदम है।

- 'रूफ टॉप जल संचयन' विधि में घर की छत पर गिरे वर्षा के जल को घर के नीचे बने कुएं में एकत्र किया जाता है। वाटर हार्वेस्टिंग तकनीक द्वारा वर्षा के व्यर्थ बहते जल को भूमिगत किया जाता है।

32 मीडिया की भूमिका (Role of Media)

- स्वस्थ लोकतंत्र के लिए यह जरूरी है कि देश की मीडिया स्वतंत्र, निष्पक्ष, सशक्त और जागरूक हो। लोकतंत्र में असहमति एवं आलोचना का महत्वपूर्ण स्थान है। जनहित में मीडिया द्वारा की गयी स्वस्थ आलोचना से जनता में जागरूकता आती है और सरकारों को भी आत्ममंथन करने तथा कार्यशैली में सुधार करने का अवसर मिलता है।

33 आतंकवाद: एक राजनीतिक क्रियाविधि (Terrorism: A Political Mechanism)

आतंकवाद एक ऐसी विचारधारा है जो केवल हिंसा और आतंक में विश्वास करती है तथा इसी के माध्यम से अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं और लक्ष्यों की पूर्ति करना चाहती है।

भारत सरकार द्वारा पारित किए गए आतंक विरोधी विधेयक के अनुसार, सरकार अथवा लोगों को आतंकित करने, विभिन्न वर्गों में वैमनस्य बढ़ाने तथा शांति भंग करने के उद्देश्य से बम विस्फोट करने, अग्नेयास्त्रों का प्रयोग करने, सम्पत्ति नष्ट करने, रासायनिक अस्त्रों का प्रयोग करते हुए आवश्यक सेवाओं में बाधा पैदा करने के उद्देश्य से किए जाने वाले कार्य आतंकवादी कार्य कहे जाने चाहिए। इस प्रकार आतंकवाद एक विचारधारा एवं कार्यपद्धति दोनों हैं जो कि असामाजिक, असंवैधानिक, असांस्कृतिक, अनैतिक एवं अवांछित तत्वों को अपने में समेटे हुए है जिसका उद्देश्य सामान्य जनता में भय एवं आतंक फैलाकर सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करना है तथा ऐसा करके समाज को बंधक बनाते हुए सरकार द्वारा अपनी बातों को मनवाना है।

समकालीन वैश्विक पृष्ठभूमि में आतंकी गतिविधियाँ न केवल भारत को बल्कि समूचे विश्व समुदाय को प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से प्रभावित कर रही हैं। विज्ञान एवं तकनीकी के विकास, संचार एवं यातायात के साधनों की व्यापकता सहित विभिन्न कारणों के संयुक्त परिणामों ने इन घटनाओं के क्षेत्रीय आयामों को आगे बढ़ाते हुए न केवल वैश्विक आयाम दिया है बल्कि इसकी तीव्रता एवं गहनता में बढ़ोतरी भी की है।

भारत में आतंकवाद का सामना करने एवं उस समस्या के समाधान के लिए अनेक सुरक्षात्मक एवं विकास संबंधी कार्य किए जा रहे हैं। आतंकवाद की भयावहता को समाप्त करने के लिए मीसा, टाडा एवं पोटा जैसे कानून बनाए गए हैं ।

आतंकवाद एक अमानवीय प्रवृति है जिससे आज लगभग संपूर्ण विश्व प्रभावित है। भारत सरकार के आतंकवाद विरोधी विधेयक में आतंकवाद को परिभाषित करते हुए कहा गया है- ''सरकार या लोगों को आतंकित करने, विभिन्न वर्गों में वैमनस्य बढ़ाने तथा शांति भंग करने के उद्देश्य से बम विस्फोट करने, आग्नेय शस्त्रों का प्रयोग करने, संपति नष्ट करने, रासायनिक या जैविक अस्त्र का प्रयोग करने तथा आवश्यक सेवाओं में गड़बड़ी पैदा करने हेतु जो भी नकारात्मक कार्य किये जाते हैं, उन्हें आतंकवादी कार्य कहा जाएगा।''

मुख्य तत्व

1. हिंसा या हिंसा की धमकी।
2. खुले रूप से न लड़ना।
3. सामान्यत: कोई न कोई राजनीतिक उद्देश्य।

4. आवश्यक गतिविधियों को बाधित करना।

5. प्रचार।

6. समाज में मनोवैज्ञानिक रूप से भय पैदा करना।

7. दबाव डालकर अपनी मांगों को मनवाने का प्रयास।

आतंकवाद के कारण

1. राजनीतिक उद्देश्य

2. पहचान का संकट

3. तुलनात्मक रूप से कमजोर आर्थिक स्थिति

4. राज्य का कमजोर चरित्र

5. धार्मिक भावनाओं का उभार, अपने धर्म के प्रति असुरक्षा का भाव। अत: धर्म की रक्षा हेतु स्वयं को बलिदान करने की प्रवृत्ति।

आतंकवाद के साधन : बम विस्फोट, हत्या, बंधक बनाना, धमकी, प्लेन हाइजैक, आत्मघाती दस्ता आदि।

आतंकवाद के प्रकार :

(1) राजकीय आतंकवाद (State Terrorism): राज्य द्वारा अपने विरोधियों पर आतंकवादी साधनों का प्रयोग करना। इसमें राज्य की संस्थाएँ जैसे- पुलिस, सेना आदि का प्रयोग विरोधियों के दमन के लिए किया जाता है। उदाहरण के तौर पर श्रीलंका में लिट्टे के उदय का प्रमुख कारण राजकीय आतंकवाद को माना जाता है। बाद में श्रीलंका सेना ने हिंसक उपायों से लिट्टे का उन्मूलन किया।

(2) स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद (Local, National and International Terrorism) : स्थानीय आतंकवाद देश के किसी क्षेत्र या प्रांत विशेष तक सीमित होता है। इसका उद्देश्य उस क्षेत्र के लिए विशेष सुविधाएँ प्राप्त करना है। इस प्रकार के आतंकवाद का विस्तार उस क्षेत्र विशेष तक होता है।

राष्ट्रीय आतंकवाद में पूरा देश आतंकवादी गतिविधियों की चपेट में आ जाता है। इसका क्षेत्र व्यापक होता है।

अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद वर्तमान समय में आतंकवाद का सबसे प्रचलित और कुख्यात रूप है। इस प्रकार के आतंकवाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। यह संपूर्ण विश्व में फैला होता है।

(3) सीमापारीय आतंकवाद (Cross Border Terrorism) : सीमापारीय आतंकवाद में आतंकवादी संगठनों की जड़ एक देश में होती है और यह दूसरे देश में आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देता है। यह अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का ही एक रूप है। भारत के जम्मू-कश्मीर में प्रचलित आतंकवाद इसका उदाहरण है।

(4) धार्मिक आतंकवाद (Religious Terrorism) : धार्मिक आतंकवाद में आतंकवादी गतिविधियों के पीछे का प्रेरक कारण धार्मिक कट्टरतावाद होता है। आतंकवादी घटनाओं को 'जेहाद' या धर्मयुद्ध की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है।

(6) नाभिकीय आतंकवाद, जैव आतंकवाद एवं साइबर आतंकवाद (Nuclear Terrorism, Cyber Terrirism and Bio-Terrorism): तकनीकी विकास ने नाभिकीय आतंकवाद, जैव आतंकवाद, साइबर आतंकवाद आदि आतंकवाद के नये रूपों को जन्म दिया।

परमाणु अस्त्रों के बढ़ते प्रसार से नाभिकीय आतंकवाद का खतरा पैदा हुआ है। अगर आतंकवादी संगठन परमाणु अस्त्र प्राप्त कर लें तो विश्व में व्यापक तबाही आ सकती है।

साइबर आतंकवाद का आशय है: जो कंप्यूटर या संचार नेटवर्क का उपयोग करता है ताकि भय उत्पन्न करने या एक वैचारिक लक्ष्य में समाज को डराने के लिए पर्याप्त विनाश या व्यवधान पैदा किया जा सके।

जैव आतंकवाद (Bio-Terrorism) में सूक्ष्म जीवों और हानिप्रद बैक्टीरिया तथा वाइरस का प्रयोग करके आतंक फैलाया जाता है। जैसे- एंथ्रेक्स का प्रयोग।

आतंकवाद को रोकने के उपाय

(i) बल-प्रयोग विधि : आतंकवाद को बल-प्रयोग एवं हिंसा से दबाना। आतंकवादी संगठनों से किसी प्रकार की बातचीत न करना। अमेरिका एवं इजरायल इसका प्रयोग करते हैं।

(ii) शांतिपूर्ण विधि : बातचीत आदि से हल निकालना। भारत इसका प्रयोग करता है।

(iii) साम-दाम दण्ड विधि : मध्यममार्गियों के साथ बातचीत करना, उन्हें पुरस्कार एवं रियायत देना। तो दूसरी ओर उग्रवादियों के खिलाफ सैन्य कार्यवाही को भी जारी रखना।

अन्य उपाय :

(1) सामाजिक-आर्थिक सुधार करना ताकि समाज के किसी वर्ग में वंचित होने की भावना न पनपे।

(2) सूचना और गुप्तचर तंत्र को मजबूत बनाना।

(3) आतंकवाद विरोधी कड़े कानून बनाना और उन्हें सक्षमतापूर्वक लागू करना।

(4) मादक पदार्थों की तस्करी पर रोक लगाना।

(5) विभिन्न समूहों की पहचान को मान्यता देना।

(6) आधुनिक सूचना तकनीक के साधनों का प्रयोग करना।

दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्यक्ष वीरप्पा मोइली ने अपनी आठवीं रिपोर्ट में आतंकवाद को रोकने के लिए कुछ सिफारिशें की हैं। इनके अनुसार आतंकवाद कोई सामान्य अपराध नहीं है, अतः आम कानूनों के जरिए आतंकवाद से नहीं निपटा जा सकता। इसके लिए विशेष कानून तथा क्रियान्वयन के लिए प्रभावी तंत्र होना चाहिए। इसीलिए वे मानते हैं कि - (i) संघीय जाँच एजेंसी आवश्यक है। (ii) फास्ट ट्रैक अदालतों का गठन होना चाहिए।

34 भ्रष्टाचार (Corruption)

आज भ्रष्टाचार सामाजिक व्यवहार का अभिन्न अंग बन गया है। 'सूखी तनख्वाह', 'मलाईदार पोस्ट या मंत्रालय', 'ऊपरी कमाई', 'सब कुछ मैनेज हो जाएगा' 'सुविधा शुल्क' 'कट मनी' आदि दैनिक बोलचाल की भाषा के अंग बन गए हैं। भ्रष्टाचार को व्यापक स्तर पर सामाजिक स्वीकृति मिल गई है। भ्रष्ट आचरण की स्थिति में सामाजिक बहिष्कार या बदनाम होने का भय अब खत्म हो गया है। भ्रष्टाचारी भी आज सार्वजनिक मंचों पर सम्मानित किये जाते हैं तथा उनके द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में जहां धन-बल का प्रदर्शन किया जाता है, वहीं बड़ी मात्रा में जनता की भागीदारी भी होती है। भ्रष्टाचार के प्रति सार्वजनिक जीवन में बढ़ती स्वीकार्यता और सहनशीलता चिंता का विषय है। भारतीय संविधान में प्रस्तावित मूल्यों समानता, स्वतंत्रता और न्याय की प्राप्ति में मुख्य बाधा भ्रष्टाचार है।

आश्चर्य नहीं कि ट्रांसपेरेन्सी इंटरनेशनल की ताजा रिपोर्ट में भारत भ्रष्ट देशों की सूची में 93वें स्थान पर पहुंच गया है। भारत की स्थिति अफ्रीका और एशिया के कई देशों से भी नीचे है।

अभी हाल ही में, जब सुप्रीम कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री रंजन गोगोई से न्यायालय में भ्रष्टाचार के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि ''न्यायाधीश भी उसी समाज से आते हैं, जिसमें भ्रष्टाचार दैनिक जीवन का अभिन्न अंग है।'' यह बात प्रशासन पर भी लागू होती है। प्रशासनिक अधिकारी भी उसी सामाजिक व्यवस्था के अंग होते हैं जहाँ भ्रष्टाचार को लेकर एक स्वीकार्य मनोवृत्ति व्यापक रूप से दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में प्रशासन में भ्रष्टाचार का होना स्वाभाविक है।

अतः सबसे पहले यह आवश्यक है कि सामाजिक व्यवस्था को ठीक किया जाए, सामाजीकरण के ढंग को सकारात्मक किया जाए। तभी प्रशासनिक और न्यायिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को कम किया जा सकता है या नियंत्रित किया जा सकता है।

अर्थ :

प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यक्तिगत लाभ के लिए निर्धारित कर्तव्यों की जान-बूझ कर उपेक्षा करना ही भ्रष्टाचार है। भारतीय दंड विधान (धारा 161) में भ्रष्टाचार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि *''कोई भी सार्वजनिक कर्मचारी वैध पारिश्रमिक के अतिरिक्त अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए जब कोई आर्थिक लाभ इसलिए लेता है कि सरकारी निर्णय पक्षपातपूर्ण तरीके से किया जा सके तो वह भ्रष्टाचार है तथा इससे संबंधित व्यक्ति भ्रष्टाचारी है।''*

परंतु यह परिभाषा केवल राजकीय कर्मचारियों तक ही सीमित है। इसके आधार पर समाज के दूसरे वर्गों में व्याप्त भ्रष्टाचार को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अतः व्यापक अर्थों में हम यह कह सकते हैं कि – *सार्वजनिक जीवन या जनजीवन में व्याप्त एक विशेष प्रस्थिति (Status) से संबंधित व्यक्ति द्वारा अपनी शक्ति या प्रभाव का स्वार्थपूर्ण प्रयोग ही भ्रष्टाचार है।* इस रूप में प्रत्येक अनैतिक आचरण को भ्रष्टाचार कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए- घूसखोरी, कालाबाजारी, भाई-भतीजावाद, सार्वजनिक धन की हेराफेरी आदि भ्रष्टाचार के ही विभिन्न रूप हैं।

क्षेत्र एवं स्वरूप

लोक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार वर्तमान में समाज की सबसे बड़ी समस्या है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र और समाज का लगभग प्रत्येक वर्ग (उदाहरण : वकील, इंजीनियर, अफसर आदि) इससे ग्रसित हैं। भ्रष्टाचार के इस व्यापक स्वरूप एवं प्रकृति को निम्नलिखित तथ्य बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है।

1. भ्रष्टाचार मूल रूप से वैयक्तिक क्रिया है परंतु अब इसका क्षेत्र व्यापक हो गया है। इसका रूप अब संस्थागत हो गया है। इसने एक सामूहिक क्रिया का रूप ले लिया है।
2. भ्रष्टाचार का सम्बन्ध व्यक्ति या समूह द्वारा अपने निर्धारित कर्तव्यों की उपेक्षा करने से है।
3. कर्तव्यों की उपेक्षा आर्थिक लाभ या अन्य लाभों के लिए की जाती है।
4. भ्रष्टाचार में पक्षपात व प्रलोभन का तत्व निहित होता है।
5. भ्रष्टाचार वर्तमान में सामाजिक समस्या का रूप ले चुका है, क्योंकि इसका क्षेत्र समाज के अधिकांश वर्गों की सामान्य कार्य प्रणाली से संबंधित हो गया है। परिणामस्वरूप समाज में नैतिक व सामाजिक मूल्यों का विघटन भी हो रहा है।

कारण

भ्रष्टाचार एक रोग है जिसकी उपस्थिति जीवन के सभी क्षेत्रों में है। लालच भ्रष्टाचार का मूल है।

उदारवादी : उदारवादियों के अनुसार मनुष्य मूलतः स्वार्थी होता है। अतः अवसर मिलने पर वह शक्ति का दुरुपयोग अपने हित में करता है। इस प्रकार उदारवादी यह मानते हैं कि भ्रष्टाचार मनुष्य की मूल प्रकृति का ही दुष्परिणाम है।

मार्क्सवादी : मार्क्सवादी भ्रष्टाचार का मूल कारण पूँजीवादी व्यवस्था एवं वर्ग विभाजन में देखते हैं। इनके अनुसार पूँजीपति वर्ग अपने हितों की पूर्ति के लिये ऐसे कानूनों को निर्मित करता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं। इसलिए भ्रष्टाचार के निदान के लिये ये पूँजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन की बात करते हैं।

अराजकतावादी : अराजकतावादी भ्रष्टाचार के लिये राज्य के अस्तित्व को मूलतः जिम्मेदार मानते हैं। इनके अनुसार गलत राजनीतिक व्यवस्था व्यक्ति को उसके स्वभाविक प्रकृति से अलग कर देती है। परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। अराजकतावादियों का यह मानना है कि राज्य अनावश्यक है।

गाँधी का यह मानना है कि राज्य भय और हिंसा के माध्यम से शांति और व्यवस्था स्थापना की बात करता है। इससे मनुष्य का स्वतंत्र, स्वाभाविक नैतिक विकास नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिलता है।

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

अन्य कारण :

1. भौतिकतावादी मूल्यों का प्रसार
2. केन्द्रियकरण की प्रवृत्ति
3. सामाजीकरण की प्रक्रिया का कमजोर होना
4. कम मेहनत कर अधिक पाने की अपेक्षा
5. कार्य व दायित्व की अपेक्षा कम वेतन
6. जन-जागरूकता का अभाव
7. विवेकाधीन ऐच्छिक अधिकार
8. प्रशासन में पारदर्शिता एवं जवाबदेही का अभाव (अब इसके निदान हेतु R.T.I. (Right to Information) को लाया गया है।
9. जटिल नियम, लंबी प्रक्रियाएँ
10. भ्रष्टाचार निवारण हेतु त्वरित उपायों की कमी
11. अत्यधिक प्रतिस्पर्धा
12. आपराधिक-राजनीतिक गठबंधन
13. व्यापारिक-राजनीतिक गठबंधन
14. अर्थ और काम जीवन का चरम लक्ष्य
15. ज्ञानवान, चरित्रवान एवं मूल्य युक्त व्यक्तियों की अपेक्षा धनवानों को समाज में अधिक प्रतिष्ठा। आज व्यक्ति की सफलता इस बात से तय की जाती है कि वह कितनी संख्या में और कितने प्रकार की भौतिक वस्तुओं का स्वामी है।

भ्रष्टाचार के दुष्परिणाम

आज जीवन का प्रत्येक क्षेत्र भ्रष्टाचार से प्रभावित है। विकास की राह में सबसे बड़ा रोड़ा भ्रष्टाचार है जो कभी-कभी विकास को बेपटरी पर ला देता है।

राजनीतिक क्षेत्र :

- लोकतात्रिंक मूल्यों पर आघात
- उत्तरदायित्व की भावना का विकसित न होना
- अपराधियों का राजनीति में प्रवेश
- कई क्षेत्रों में वोट के बदले नोट

आर्थिक क्षेत्र :

- महंगाई
- काले धन की समानांतर अर्थव्यवस्था
- पूंजी का केंद्रीकरण
- मांग व पूर्ति पर असर
- कालाबाजारी को प्रोत्साहन
- येन केन प्रकारेण कम समय में अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास। (2008 में आयी वैश्विक आर्थिक मंदी का कारण)

सामाजिक क्षेत्र :

- सामाजिक विषमता की वृद्धि
- सामाजिक मूल्यों का पतन
- परस्पर विश्वास की कमी
- सामाजिक विघटन, पारिवारिक मूल्यों का विघटन

धार्मिक क्षेत्र :

- धार्मिक लोगों का भावनात्मक शोषण
- स्व-घोषित धर्माचार्यों की बढ़ती संख्या

प्रशासन में भ्रष्टाचारः

शासन में भ्रष्टाचार आज देश के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है, जो राष्ट्रीय जीवन के सभी पक्षों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। राजनीतिक दल, सरकार, न्यायपालिका, कारोबार, खेल-कूद, मीडिया आदि को भ्रष्टाचार ने प्रभावित किया है। *भ्रष्टाचार ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार के लिए सबसे बड़ा अवरोध साबित हो रहा है।*

प्रशासनिक संदर्भ:

प्रशासनिक सुधारों के लिए वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में गठित द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने भ्रष्टाचार पर नियंत्रण को सबसे बड़ी चुनौती के रूप में स्वीकार किया है।

कारण : 1. प्रशासनिक सेवाओं में मौखिक आदेश पर काम करने और आदेश जारी करने की पद्धति रही है, जिसे रिकॉर्ड में नहीं रखा जाता।

2. स्थानांतरण, पदस्थापना, अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि मामलों को अपारदर्शी तरीके से किया जाता है। प्रशासनिक अधिकारियों का किसी स्थान पर कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता। परिणामस्वरूप 'तबादला उद्योग' की स्थिति उभरी है, जिसमें बड़ी मात्रा में काले धन का उपयोग होता है। ट्रांसफर एवं पोस्टिंग को प्रायः पुरस्कार अथवा दण्ड के औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है। इससे प्रशासनिक अधिकारियों की सेवा की भावना, मनोबल एवं उत्तरदायित्व बोध प्रभावित होता है और साथ ही राजनीतिक तटस्थता को बनाए रखना कठिन हो जाता है।

देश में भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी व्यापक हो चुकी हैं कि केवल प्रशासनिक सुधारों से स्थिति में बदलाव सम्भव नहीं। इसके लिए न्याय प्रक्रिया में सुधार के साथ-साथ राजनीतिक सुधार विशेषकर चुनाव प्रणाली में सुधार आवश्यक है।

होता समिति ने भी अधिकारियों का निश्चित कार्यकाल न होना, सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में मंद गति एवं बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार का मुख्य कारण माना था।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की चौथी रिपोर्ट 'शासन में नैतिकता' 2007 में आई। इसमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए गए-

1. संविधान के अनुच्छेद 311 को समाप्त किया जाए। यह अनुच्छेद भ्रष्ट नौकरशाहों को अनुचित संरक्षण प्रदान करता है, जिससे भ्रष्टाचार को रोकने में बाधा उत्पन्न होती है। संविधान के अनुच्छेद 311 में प्रावधान है कि केन्द्र राज्य के अधीन किसी सिविल सेवक को उसके पद से हटाने का अधिकार केवल उसकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी को है। साथ ही गलत आचरण या आपराधिक आरोपों की पुष्टि होने पर ही उसे पद से हटाया जा सकता है।

2. हिंसा भड़काने पर संबंधित दलों/ व्यक्तियों पर क्षतिपूर्ति की भरपाई करने का प्रावधान हो।

3. ईमानदार लोक सेवकों को संरक्षण दिया जाए।

सुप्रीम कोर्ट ने अभी हाल ही में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में वायु प्रदूषण से निपटने के उपायों पर असंतोष जाहिर करते हुए कहा कि "प्रशासन को जन समस्याओं के प्रति अपनी निष्क्रियता एवं जड़ता को त्यागना होगा।" उनका रवैया जन समस्याओं के प्रति टालमटोल करने वाला रहा है। उनकी चेतना को जागृत करना आवश्यक है।

भ्रष्टाचार को रोकने के उपाय

1. शक्ति का विकेन्द्रीकरण
2. हतोत्साहन व प्रोत्साहन की नीति
3. सूचना का अधिकार
4. जन जागरूकता
5. प्रशासनिक पारदर्शिता / सरकारी कार्यों में पारदर्शिता, समय सीमा में काम, उत्तरदायित्व का निर्धारण।
6. भ्रष्टाचार के विरूद्ध लड़ने वाले या आवाज उठाने वालों को सुरक्षा व प्रोत्साहन

7. भ्रष्टाचार की स्थिति में त्वरित जाँच-पड़ताल और त्वरित एवं प्रभावी दंडात्मक कार्यवाही।
8. प्राचीन काल में ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने शासन को भ्रष्टाचार से मुक्त करने के लिए दार्शनिक राजा की अवधारणा प्रस्तुत की।

- सूचना का अधिकार सुशासन की मास्टर कुंजी है।
- इथिक्स इन गवर्नेंस की बात होनी चाहिए
- जब भी कोई सार्वजनिक भ्रष्टाचार का मामला उजागर होता है तो मात्र दोषी व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। उससे जुड़ी संस्थागत इकाईयों में कोई परिवर्तन या सुधार लाने की बात नहीं की जाती है। जबकि उस संस्थागत इकाई में भी सुधार पर बल दिया जाना चाहिए।

उठाये गये कदम :

- आई.पी.सी. के अधिनियम (161-168 तक) भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम हैं।
- केन्द्र सरकार ने निम्नलिखित चार विभागों की स्थापना भ्रष्टाचार विरोधी उपायों के अन्तर्गत की- (i) कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग में प्रशासनिक सतर्कता प्रभाग (Administrative Vigilance Division), (ii) केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (CBI), (iii) राष्ट्रीयकृत बैकों/सार्वजनिक उपक्रमों/मंत्रालयों/विभागों में घरेलू सतर्कता इकाइयाँ और 4. केन्द्रीय सतर्कता आयोग (CVC)।
- लोकपाल, मुख्य सतर्कता आयुक्त, लोकायुक्त इत्यादि की नियुक्ति।
- 'सूचना का अधिकार' आम जनता को प्राप्त।
- प्रशासनिक सुधार आयोग
- फास्ट-ट्रैक कोर्ट का गठन
- ई-गवर्नेंस की बात
- भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने हेतु एक नई पहल के रूप में **'ह्विसिल ब्लोअर बिल'** को लोकसभा में पारित किया गया और उसे राष्ट्रपति द्वारा मंजूरी दी गई। सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार, घोटालों एवं कुप्रबंध आदि को उजागर करने वालों को सुरक्षा सुनिश्चित करने वाले 'ह्विसिल ब्लोअर बिल' को पारित किया गया। अब इसने कानून का रूप ले लिया है।
- ***प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार से आप कैसे निपटेगें?/पुलिस की छवि सुधारने या जनता को उसके निकट लाने के लिए क्या करना होगा?***
- ***पुलिस की कार्यकुशलता में सुधार***
- मैं अपने कर्तव्य का ईमानदारी एवं दृढ़तापूर्वक सम्पादन करूँगा। इससे आसपास काम करने वालों में एक Strong Message जायेगा।
- बिना किसी भेदभाव के सबकी हिफाजत करना।
- अपने नम्बर को फ्लैश आउट करूँगा तथा कुछ स्थानों पर शिकायत पेटिका रखूँगा और शिकायतों का विधिवत निपटारा करूँगा।
- नीचे के स्टॉफ को अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहन एवं पुरस्कार और गलत करने पर हतोत्साहित करना चाहिए।
- वस्तुतः सभी नौकरशाह यदि स्थानान्तरण का भय और अच्छी नियुक्तियों का लालच छोड़ दें तो वे स्वतंत्र रूप से

कार्य कर सकते हैं।

- पारदर्शिता, जबावदेही तय करना
- Citizen charter
- Right to Service Act
- Right to reject
- प्रधानतः Constabulary को सुधारना होगा–
    - 24 Hour की duty है।
    - 20 वर्षों तक पदोन्नति नहीं है।
    - Proper Training नहीं (Humanitarian Based)

  क्योंकि Constabulary का ही सबसे अधिक People Contact होता है। Constabulary के behave से Police की नकारात्मक छवि बनती है। वह भय खाने लगता है।
- सेवा स्थिति में सुधार, भावी सुरक्षा, पदोन्नति, आवासीय सुविधा, बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था आदि।
- परिवार, शैक्षणिक संस्थानों एवं समाज के माध्याम से बचपन में ही बच्चों के मन-मस्तिष्क में मूल्यों को बीजारोपण एवं अच्छे संस्कार डालने का प्रयास।

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR